Chapter-6

==========

अध्याय: 6 :: सांस्कृतिक, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक समस्याएं ::

==========

व दबदबा बना रहे और उस जरिए कुछ अतिरिक्त आमदनी भी होती रहे ।

"जल टूटता हुआ " में बलई (एक पात्र) अपनी कुदालों में बेंट लगाने के लिए बबूल की डालें काट रहा था । वास्तव में यह बबूल का पेड़ बलई और दलसिंगार के खेत के मेड़ पर पड़ता था । दीनदयाल और दौलतराम दलसिंगार को चढ़ाते हैं । दलसिंगार भाला लेकर पहुंच जाता है । दलसिंगार के भाले के वारों से बचने के चक्कर में बलई की टांगी दलसिंगार को लग जाती है और इस प्रकार बलई के हाथों दलसिंगार का खून हो जाता है । तब सतीश , दीन दयाल , दौलत , बिरजू , आदि सभी लोग दौड़ आते हैं । इसके बाद पुलिस बलई के उपरान्त बिरजू को भी गिरफ्तार कर लेती है । बिरजू प्रतिवाद करता है कि वह तो खून हो जाने के बाद पहुंचा है और निर्दोष है । इसपर पुलिस कहती है कि "इसका फैसला तो बाद में होगा कि कौन दोषी है । खून एकाएक थोड़े होता है और न अकेले होता है । एक आदमी खून करता है , दूसरा शह देने के लिए छिपा रहता है । "[88] दूसरे लोग भी बिरजू का पक्ष लेने से कतराते हैं क्योंकि कौन पड़े "भवानी के भक्खर में ? पुलिस वालों का चक्कर बड़ा बीहड़ होता है । कौन बोले ? "[89]

इसे एक विचित्र विडंबना के अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि आज़ादी के इतने वर्षों के उपरान्त भी ग्रामीण जनता पुलिस के नाम से थर-थर कांपती है । असामाजिक तत्वों से पुलिस का निरंतर प्रवर्द्धमान गठबंधन असंदिग्धरूप से एक चिंतनीय विषय है । डाकाजनी और राहजनी , चोरी-सेंध पुलिस को इत्तिला देकर की जाती है । इसका एक बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र निम्नलिखित दोहे में मिलता है —

" दस्यूराज ने बिगड़कर , लौटायी सौगात ।
घाटा कैसे खायेंगे , रेट पुलिस का सात ।। "[90]

उपर्युक्त दोहा मध्यप्रदेश में घटित एक सच्ची घटना पर आधृत है । डाकुओं ने मध्यप्रदेश ट्रान्सपोर्ट की एक बस को लूटा । बाद में उन लोगों ने सभी यात्रियों को उनकी चीज़ें वापिस लौटा दीं , क्योंकि तमाम आलुटित संपत्ति चार-पांच हजार से अधिक की नहीं हो रही थी और दूसरी तरफ पुलिस से हुए अलिखित अनुबन्ध के अनुसार उन्हें प्रति बस सात हज़ार रूपये देने होते थे ।

अतः यह घाटे का सौदा डाकू भला कैसे कर सकते थे ?

" जल टूटता हुआ " , " अलग अलग वैतरणी " , " कभी न छोड़ें खेत " , " कब तक पुकारूं " , " उग्रतारा" , " इमरतिया" , "राग दरबारी" प्रभृति अनेक ग्रामभित्तीय उपन्यासों में पुलिस की इस "एट्रोसिटी" को रेखांकित किया जा सकता है ।

" जल टूटता हुआ" का कुंजू सतीश का पक्ष लेता है । अतः महीप-सिंह, दीनदयाल, तथा दलसिंगार मउगा आदि पुलिस से सांठ-गांठ करके उसे पुलिस द्वारा पकड़वा लेने का षडयंत्र रचते हैं । कुंजू बदमी चमारिन को प्रेम करता है , इतना ही नहीं , वह उससे विवाह भी करना चाहता है । पुलिस को तो , सरकार की घोषित नीति के अनुसार , ऐसे विवाहों को प्रोत्साहित करना चाहिए । बजाय इसके वे कुंजू को ही पकड़कर डांटते-डपटते हैं । सतीश उसे छुड़ा न लाता तो वे उसकी बड़ी ही दुर्गत करते । उसी प्रकार नागार्जुन के उपन्यास " उग्रतारा" में कामेश्वर नामक एक युवा-चेतना संपन्न युवक उग्रतारा (उगनी) नामक एक ब्राह्मण युवा विधवा से विवाह करना चाहता है । गांववालों के विरोध के कारण उसे भागना पड़ता है । कामेश्वर के इस प्रगतिशील कदम पर हमारी समाजवादी सरकार की पुलिस को कामेश्वर का साथ देना चाहिए , परंतु पुलिस गांव के स्थापित हितों से मिलकर दोनों को पकड़ लेती है । गांव से सत्तर मील की दूरी पर दूसरे जिले की सबडिविज़न अदालत में एक ही पेशी में उसका केस खत्म कर दिया जाता है । कामेश्वर का नर्मदेश्वर के नाम भिजवाया गया तार बीच में ही उड़ा दिया जाता है । कामेश्वर को मुसलमान करार देते हुए यह आरोप लगाया जाता है कि वह उगनी को पूर्व-पाकिस्तान (अब बांगला देश) भगाकर ले जा रहा था । उगनी को तीन महीने की तथा कामे-श्वर को नौ महीने की सज़ा होती है । तब पुलिस तथा मढ़िया-सुन्दरपुर के नर-राक्षस उगनी की देह पर तरह-तरह के अत्याचार कई-कई दिनों तक करते रहते हैं ।

"राग दरबारी" के दारोगा साहब पहले तो जोगनाथ को पकड़ने की बात करते हैं , परंतु एक सिपाही से पता चलने पर कि जोगनाथ वैद्यजी का आदमी है , उसे बाइज्जत छोड़ देते हैं । वैद्यजी का इतना रुतबा है कि उनकी बात न मानने वाले अधिकारी का तबादला करवा दिया जाता

है , इसलिए न केवल वैद्यजी बल्कि उनके सुपुत्र रूप्पनबाबू पुलिस-अधिकारियों से दादागिरी से "थांसू" भाषा में बातचीत करते हैं । थाने में रूप्पनबाबू के आने पर दारोगा कुर्सी से खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं और बड़ी ही विनम्रता से पेश आते हैं । गरीब-निरीह लोगों पर भेड़िये की तरह झपटने वाले ये लोग यहां भिगी बिल्ली बन जाते हैं और उनकी हर सही-गलत बात में हां में हां मिलाते रहते हैं ।[91]

नव-धनिक वर्ग : स्वाधीनता के उपरान्त एक नया वर्ग पनपा है , जिसके मूल में भ्रष्ट राजनीति है , वह नया वर्ग है नव-धनिक वर्ग (नीओ केपिटियालिस्ट) । उस पुराने धनिक वर्ग में तो शिक्षा-संस्कार , कला-प्रेम प्रभृति के दर्शन भी कभी-कभी हो जाते थे , परन्तु यह नव-धनिक वर्ग , इसमें भी नितान्त कोरा है । पैसे की ताकत के आगे वह किसीको कुछ नहीं समझता । "राग दरबारी" के वैद्यजी के सुपुत्र रूप्पनबाबू की धृष्टता का एक चित्र द्रष्टव्य है — " रूप्पनबाबू स्थानीय नेता थे । उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि इण्डिया में नेता होने के लिए धूप में बाल सफेद करने पड़ते हैं । उनके नेता होने का सबसे बड़ा आधार यह था कि वे सबको एक ही निगाह से देखते थे । थाने में दारोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर , दोनों उनकी निगाह में एक थे । उसी तरह इम्तहान में नकल करने वाला विद्यार्थी और कॉलेज के प्रिंसिपल उनकी निगाह में एक थे । वे सबको दयनीय समझते थे , सबका काम करते थे , सबसे काम लेते थे । उनकी उतनी इज्जत थी कि पूंजीवाद के प्रतीक दूकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं , अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुंचाकर किराया नहीं , आशीर्वाद मांगते थे । उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहां का कॉलेज था , जहां उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे । "[92]

भगवतीचरण वर्मा कृत " सबहि नचावत राम गोसाईं " साम्प्रतिक , गन्दी , कुत्सित राजनीति को व्यंग्य के माध्यम से उकेरने वाला उपन्यास है । भ्रष्टाचार व निपोटिज़्म की अमरवेल पर पनप रही राजनीति की घिनौनी छवि समूचे देश के वर्तमान व भविष्य पर बुरी तरह से काबिज

हो रही है । देश नंगों और टुच्चों के हाथों में खिसक रहा है । घासीराम एक कुटिल बुद्धि रखने वाला सामान्य-सा दांडीमारू बनिया है । उसका पुत्र मेवालाल रुपये से रुपये को पैदा करने की कला को जानता है । पिता द्वारा धर्मादि के खाते से प्राप्त पांच सौ रुपयों की शक्ति पर हजारों का चन्दा संग्रहीत करके सरकारी जमीन पर ठाकुरद्वारा स्थापित कर लाखों की संपत्ति को जोड़ लेने की कला में वह माहिर है । पिता के पैसों को महाजनी में लगा-कर सूद-दर-सूद वसूल करते हुए उसे वह लाखों में तब्दील कर देता है । उसका पुत्र राधेश्याम राजनीतिक सांठ-गांठ से मेवालाल की लाखों की संपत्ति को कल-कारखाने , ठेकेदारी , ब्लेक-मार्केटिंग , स्मगलिंग आदि से करोड़ों में बदल देता है । इसमें लेखक ने शासक (पावर), शासनतंत्र (एडमिनिस्ट्रेशन) और पूंजीपतियों (कैपिटिया लिस्ट्स) के पारस्परिक स्वार्थानुबंधित संबंधों को भलीभांति चित्रित किया है । उक्त गठबंधन के कारण देश की प्रगति और संपन्नता कुछ इने-गिने पूंजीपतियों के हाथों में कैद हो जाती है । जाने-माने अर्थशास्त्री प्रो० के.के. देवत्त के शब्दों में — " थे केरी ओन द बिजनेस आफ एग्रिकल्चर, ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री फोर थेर ओउन परशनल प्रोफिट एण्ड नाट फोर द बेनिफिट आफ द सोसायटी. द रिजल्ट इज़ थेट द लाइन्स शेर आफ द नेशनल डिविडण्ड गोज़ टु द पावरफुल कैपिटिया लिस्ट्स एण्ड द रिच लेण्डलोर्ड . द मैजेरिटि=अक्र मासिस आर एक्सप्लोइटेड एण्ड डु नोट गेट ए फेयर रिटर्न आफ थेर लेबर. " 93

इसी उपन्यास का जबरसिंह स्वाधीनता संग्रामों में भाग लेते-लेते उत्तरप्रदेश के गृहमंत्रीत्व के पद तक पहुंच जाता है । वह वस्तुतः एक डाकू नाहरसिंह का वंशज है । डाकू नाहरसिंह और बेडिन जाति की एक स्त्री — भमरी — की संतान है केहरसिंह । बाप की डाकूगिरी से बेटा केहरसिंह जमींदारी करता है , और उसी केहरसिंह की औलाद है जबरसिंह । प्रारंभ में जबर एक निश्छल भावुक देशप्रेमी होता है , परंतु गृह-मंत्री के पद तक पहुंचते-पहुंचते राजनीति की भयंकर गलाकाट स्पर्द्धा में डूबते-उतराते हुए एक ठण्डा स्वार्थान्ध कुटिल रानीतिज्ञ बन जाता है । आज़ादी के उपरान्त की यह जो स्थिति है उसका सटीक चित्रण माखनलाल चतुर्वेदी की एक पंक्ति में मिलता है — " पगडंडीपगडंडी बन गई राजमार्ग । " 94

एक नया अजनबीपन : आधुनिक भावबोध-संपन्न नगरीय परिवेश के उपन्यासों में व्यक्तिवादी, स्वकेन्द्रित स्वार्थ, भौतिकवादी (मटिरियालिस्टिक) चिंतन के फलस्वरूप उत्पन्न संत्रास पीड़ा, एकाकीपन आदि के कारण जो एक विशिष्ट प्रकार के अजनबीपन का भाव मिलता है ; उससे कुछ अलग प्रकार का अजनबीपन इन ग्रामभित्तीय उपन्यासों में मिलता है — " आज़ादी के बाद यह कैसा फैला रोग ।
कमतर होते जा रहे भोलेभाले लोग ।। "[95]

राजनीति की काली आंधी ने सबकुछ समाप्त कर दिया है । समाज, जाति, भाई-बिरादरी, धर्म, शिक्षा, व्यापार, नेतागिरी सभी में राजनीति के प्रवेश हो जाने से मूल्यों की, निष्ठा की, भावना की एक भयंकर अराजकता बांध-टूटे बाढ़ की भांति सबको लीलती हुई फैलती जा रही है । मूल्यों की ऐसी अवहेलना पहले कभी नहीं देखी गई । मराठी कवि मूलगांवकर की कविता का एक प्रसिद्ध मुहावरा है — " फरक नहीं पड़ता । " इस देश में कुछ भी हो जाय फरक नहीं पड़ता । जिस देश में प्रधानमंत्री की दोस्ती धनबाद के कुख्यात माफिया-किंग सूरजसिंह से हो, और उन्हें इस संबंध में पूछे जाने पर वे कहते हों — सौ वोट ? तो वहां कुछ भी हो जाय कोई फरक नहीं पड़ता ।

मूल्यों के इस घोर अकाल में मूल्य की बात करने वाला बेवकूफ और मूर्ख समझा जाता है । उपहास का पात्र बनता है, जैसे "राग दरबारी " में लंगड । ऐसे लोग अब इस ग्रामीण परिवेश में नितान्त अकेले पड़ गए हैं । या तो उन्हें मार दिया जाता है ; "महाभोज" के बिरू, "बलचनमा" के बलचनमा, "मैला आंचल" के बावनदास, " धरती धन न अपना" के काली की भांति ; या फिर वे "राग दरबारी" के लंगड, "अलग अलग वैतरणी " के जग्गनमिसिर और कनिया, " सूखता हुआ तालाब " के देवप्रकाश की भांति एक पागलनुमा ज़िन्दगी जीने पर लाचार हो जाते हैं । यही है आधुनिक भारतीय ग्रामीण परिवेश का अजनबीपन जो रहीम के निम्नलिखित दोहे में बारबार पड़घाता है —

" सर सूखे पंछी उड़ें औरनि सरहिं समाहिं ।
दीन-मीन बिनु पंख के कहं रहीम कहं जाहिं ।। "

निष्कर्ष : समग्र अध्याय का सिंहावलोकन कर जाने पर निम्नलिखित तथ्य निष्कर्ष रूप में सामने आते हैं :-

§1§ गांधीजी की स्वतंत्रता-विषयक परिकल्पना का ; देश को समग्रतया -- सामाजिक , राजनीतिक , आर्थिक , सांस्कृतिक , भाषिक सभी दृष्टियों से एक स्वतंत्र-चेत्ता राष्ट्र के रूप में विकसित करके उनके सपने का भयंकर ह्रास स्वातंत्र्योत्तर काल में हुआ और इस कटु यथार्थ को "राग दरबारी" , "जल टूटता हुआ " , " अलग अलग वैतरणी " , " आधा गांव " , " मैला आंचल " , " कब तक पुकारूं " , " बलचनमा" , "धरती-धन न अपना " और " सूखता हुआ तालाब " प्रभृति स्वातंत्र्योत्तर ग्राम-भित्तीय उपन्यासों में यथातथ्य रूप में स्थापित करने का एक संनिष्ठ प्रयास मिलता है ।

§2§ आज़ादी के इन चौंवालीस वर्षों में चौंवालीस प्रामाणिक , निष्ठावान नेता भी नहीं दे पाये , क्योंकि आज़ादी के उपरान्त शोषकों का वही वर्ग नये मुखौटों को धारण करके सत्ता-स्थानों पर छा गया । "राग दरबारी " के वैद्यजी , " अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह और बुझारथसिंह , " जल टूटता हुआ " के महीपसिंह आदि इसी प्रकार के लोग हैं जो सत्ता और संपन्नता की सभी राहों पर कुण्डली मार कर बैठ गए हैं ।

§3§ सरकार की आरक्षण नीति के कारण कुछ पिछड़ी जाति के लोग पंचायत आदि स्थानिक स्वराज्य की संस्थाओं में पाए जाते हैं , परन्तु ग्रामीण तबकों की राजनीति में वर्चस्व आज भी पुराने सामंतकालीन या पूंजीवादी लोगों का है , जिन्हें उक्त ग्रामभित्तीय उपन्यासों में परीक्षित किया जा सकता है ।

§4§ ग्रामीण नेतागिरी में शिक्षा का , ऊंची शिक्षा का प्रायः अभाव-सा मिलता है ।

§5§ राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के स्वार्थपूरित अनुबंधों के कारण ग्रामीण तबकों में एक विशेष वर्ग को लाभ मिल रहा है , परंतु बहुसंख्य गरीब वर्ग उनसे निर्मित भ्रष्टाचार के पाटों में बुरी तरह पिसा जा रहा है ।

§6§ स्वातंत्र्योत्तर भ्रष्ट राजनीति के कारण उत्पन्न विषमता , विरूपता, विद्रूपता , विसंगतता , प्रभृति से ग्रामीण समाज का विशेष तबका , चेतना-संपन्न तबका , मोहभंग की स्थिति का शिकार है । इस मोहभंग के कारण ही ग्रामभित्ततीय उपन्यासों में व्यंग्यात्मकता के तेवर सविशेष दृष्टिगत हो रहे हैं ।

§7§ नगरों की भांति गांवों में भी राजनीतिक हथकंडों का , नंगई और दंगई का , चुनावों में प्रयोग हो रहा है , जिसके कारण नितांत मूल्यहीन पूंजीसंपन्न तथा ~~कचवकिकिक गुण्डे~~ गुण्डे राजनीति के मैदान में आ और छा रहे हैं । कहीं-कहीं चुनावों में "डमी" व्यक्तित्व भी उभर रहे हैं , यथा - "राग दरबारी" के=~~सनिचर~~ का सनीचर । "नव-धनिक वर्ग " या नव-प्रभु-वर्ग " का एक नया आयाम ग्रामीण भ्रष्ट राजनीति को और रसातल में ले जा रहा है । पुलिस पहले भी प्रभु-वर्ग के साथ थी , आज भी है । कुत्ते और भेड़िये का दोहरा "रोल" वह अदा कर रही है । प्रभु-वर्ग के सम्मुख कुत्ता और सामान्य प्रजाजन के सम्मुख भेड़िया ।

§8§ फलतः अच्छे , भले , भावुक , मूल्यनिष्ठ , संवेदनशील , प्रामाणिक लोगों का अकाल बढ़ रहा है । राजनीति की काली आंधी ने जीवन के तमाम उच्च मूल्यों और आदर्शों को लील लिया है , फलतः कुछ सोचने वाले लोगों में एक नये प्रकार का , विशिष्ट अजनबीपन विकसित हो रहा है ।

======= XXXXXX =======

:: संदर्भानुक्रम ::

§1§ काव्यधारा : सं. नरोत्तमदास अग्रवाल : ज्ञान भारती प्र. : पृ0 27 ।
§2§ दिशांतर : सं. डा. परमानंद श्रीवास्तव : संकलित कविता ।
§3§ बिजली के फूल : डा0 पारूकांत देसाई : पृ0 54 ।
§4§ "दिल्ली डायरी " : पृ0 30 §5-6§ वही : पृ0 30
§7§ संपूर्ण गांधी वाङ्मय : खण्ड-89 । §8§ प्रार्थना प्रवचन : खण्ड-2 : पृ. 144 ।
§9§ संपूर्ण गांधी वाङ्मय : खण्ड-90 । §10§ वही ।
§11§ "मानसमाला " : डा0 पारूकांत देसाई ।
§12§ राग दरबारी : पृ0 41-42 । §13§ मैला आंचल : पृ0 136 ।
§14§ प्रश्न और मरीचिका : पृ0 382 । §15§ द्रष्टव्य : वही : पृ082-83 ।
§16§ प्रेम अपवित्र नदी : पृ0 279 । §17§ बलचनमा : पृ0 63 ।
§18§ मिलन के क्षण चार : डा0 पारूकांत देसाई : पृ0 72 ।
§19§ दिल एक सादा कागज़ : पृ0 114 §20§ राग दरबारी : पृ0 178 ।
§21§स्वतंत्रता आंदोलन और उसके बाद : पं. कमलापति त्रिपाठी : पृ. 16 ।
§22§ " इमरजिंग रूरल लीडरशीप इन एन इण्डियन स्टेट " : डा0 डी.एस. चौधरी : पृ0 51-52 ।
§23§ दिल एक सादा कागज़ : पृ. 146 ।
§24§"इमरजिंग रूरल लीडरशीप इन एन इण्डियन स्टेट" : पृ0 52-53 ।
§25§ वही : पृ0 54 । §26§ अभिव्यक्ति : डा0 पारूकांत देसाई ।
§27§ शहीद और शोहदे : भूमिका से : पृ0 3-2 ।
§28§ प्रश्न और मरीचिका : पृ. 24 । §29-30§ वही : पृ0 39-40 , पृ0 20 ।
§31§ द्रष्टव्य : " साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" : डा0 पारूकांत देसाई :पृ. 75 ।
§32§ एन आर्टिकल : द कांग्रेस डायलेमा : हरीश खरे : टाइम्स आफ इण्डिया:पृ. 6 ।
§33§ होमेज टु नेहरू : पृ. 119 । §34§ द्रष्टव्य : राग दरबारी: श्रीलालशुक्ल ।
§35§ द्रष्टव्य : प्रेम अपवित्र नदी : लक्ष्मीनारायण लाल ।
§36§ द्रष्टव्य : प्रश्न और मरीचिका : भगवतीचरण वर्मा ।
§38§ टोपी शुक्ला : भूमिका से । §39§ अलग अलग वैतरणी : पृ0 685-686 ।
§40§साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा0 पारूकांत देसाई : पृ. 82 ।

§41§ राग दरबारी : पृ. 11 §42-43§ वही : पृ. क्रमशः 95 , 129 ।

§44 से 49 § राग दरबारी : पृ0 क्रमशः 214, 257, 330, 334, 368, 399 ।

§50§ जल टूटता हुआ : पृ. 353-354 । §51§ सूखता हुआ तालाब : पृ0 104 ।

§52§ राग दरबारी : पृ. 176 । §53§ महाभोज : पृ0 139

§54§ जंगलतंत्रम : श्रवणकुमार गोस्वामी : पृ0 67-68 । §55§ वही : पृ. 68-69 ।

§56§ नेताजी कहिन : पृ. 27 ।

§57§ बिजली के फूल : डा0 पारूकांत देसाई : पृ. 59 ।

§58§ देसाई-सतसई : §अप्रकाशित§ डा0 पारूकांत देसाई : से एक सुना हुआ दोहा ।

§59§ राग दरबारी : पृ. 192 । §60§ वही : पृ0 192 ।

§61§ इस मैदान के संबंध में यह जिक्र आया है कि " जुता हुआ ऊसर कृषि-विज्ञान की पढ़ाई के काम आता था । उसमें जगह -जगह उगी हुई ज्वार प्रिंसिपल की भैंस के काम आती थी । " : राग दरबारी : पृ0 25 ।

§62§ राग दरबारी : पृ0 193 । §63§ वही : पृ0 194-195 ।

§64§ द्रष्टव्य : वही : पृ0 213 । §65§ वही : पृ0 214 ।

§66§ " टु फेसिस आफ इन्दिरा गांधी " : पृ0 22 ।

§67§ अलग अलग वैतरणी : पृ0 88 । §68§ राग दरबारी : पृ0 195 ।

§69§ संदेश : गुजराती दैनिक : दि. 18-7-90 । §70§ राग दरबारी:पृ. 190 ।

§71§ द्रष्टव्य : राग दरबारी : पृ0 262 । §72§ वही : पृ0 265 ।

§73§ वही : पृ0 265-266 । §74§ वही : पृ0 267 ।

§75§ इस अंग्रेज को ये एक ऐसे साधू की तलाश थी जो बिलकुल गंवार और निरक्षर हो , कम बोलता हो और कुछ भी न जानता हो । : द्रष्टव्य : प्रेम अपवित्र नदी : पृ0 267 ।

§76§ वही : पृ0 268 । §77§ वही : पृ0 268 । §78§ वही:पृ0270 ।

§79§ वही : पृ0 271 । §80§ राग दरबारी : पृ0 270-271 ।

§81§ इधर गल्फ-युद्ध के बाद ये शब्द खूब प्रचलित हो रहे हैं ।

§82§ नदी फिर बह चली : पृ0 365 । §83§ द्रष्टव्य : वही : पृ0 380 ।

§84§ द्रष्टव्य : जल टूटता हुआ : पृ0 308 । §85§ द्रष्टव्य:वही:पृ0 308 ।

§86§ अवैध हमैल गिराने के कारण जो भ्रूण प्रेतरूप धारण करता है , उसे "पेटभइआ" कहा जाता है ।

§87§ द्रष्टव्य : सूखता हुआ तालाब : पृ0 45-46 ।

§88§ जल टूटता हुआ : पृ0 526 ।

§89§ वही : पृ0 526 ।

§90§ "मानसमाला" का एक दोहा : डा0 पारूकांत देसाई ।

§91§द्रष्टव्य : राग दरबारी : पृ0 18-23 ।

§92§ वही : पृ0 23 ।

§93§ " मोडर्न इकोनोमिक थियरी " : डा0 प्रो0 के.के. देवेत्त : पृ0 609 ।

§94§"रावी का तट:यमुना का तट " नामक कविता में यह पंक्ति आती है ।

§95§ "मानस-माला " : डा0 पारूकांत देसाई ।

====== xxxxxx ========

:: अध्याय : 6 ::

:: सांस्कृतिक , शैक्षिक , मनोवैज्ञानिक तथा धार्मिक समस्याएं ::

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में जो सामाजिक , आर्थिक, राजनीतिक प्रभृति मानव-जीवन की समस्याएं मिलती हैं ; उनके परिणामस्वरूप अन्य प्रकार की समस्याएं , यथा — शैक्षिक , मनोवैज्ञानिक व धार्मिक समस्याएं भी उद्भूत होती हैं । वस्तुतः कोई भी समस्या अपने आप में पूर्ण नहीं होती । दूसरे आयाम उसमें अ असंदिग्ध रूप से संलग्नित रहते ही हैं । उदाहरणस्वरूप केवल स्त्री-शोषण की समस्या को ही लें । उसका विश्लेषण करने पर सामाजिक कारणों के उपरान्त अन्य कई कारण भी प्रत्यक्ष हुए बिना नहीं रहेंगे । शिक्षा की दृष्टि से विचार करें , तो आज भी , स्त्री-शिक्षा के इतने प्रचार-प्रसार के बाद भी , स्त्रियों को द्वितीयक स्थान ही प्राप्त है । यह बात अनुपात की दृष्टि से की जा रही है । गांवों में तो स्थिति और भी चिंतनीय है । पिछड़ी जातियों में तो कन्या-शिक्षा नहींवत् है । अगड़ी जातियों में भी मैट्रिक्यूलेशन के बाद उनकी शिक्षा के दरवाजे प्रायः बन्द हो जाते हैं । कुछ जातियों में केवल विवाह के लिए पढ़ाया जाता है । "राग दरबारी" उपन्यास की बेला को देखने के लिए {9} कुछ लोग आते हैं । वस्तुतः उन्हें तो दहेज में मिलने वाली मोटी रकम से ही वास्तविक सरोकार था । लड़की तो मात्र बेजुबान , बेजान चीज़ है उनके लिए ; सो उनमें से एक व्यक्ति कहता है :- " लड़की पढ़ी -लिखी है तो अच्छा है और नहीं है तो बहुत अच्छा है , क्योंकि मुझे उससे मास्टरी नहीं करानी है ; और लड़की सुन्दर है तो अच्छा है और नहीं है तो बहुत अच्छा है , क्योंकि मुझे उसे कोठे पर नहीं बैठाना है । "[1] वस्तुतः यह एक गन्दी , घिनौनी , गर्हित गाली है स्त्री-जाति के नाम ; खुला अपमान है उसका । परंतु उसके पीछे सहस्त्राधिक वर्षों से चली आ रही हमारी सांस्कृतिक , धार्मिक , शैक्षिक मान्यताएं कारणभूत हैं जिनके रहते मनोवैज्ञानिक दृष्टया एक प्रकार की लघुता-ग्रंथि समूची स्त्री-जाति में पाई जाती है ।

स्त्रियों में कई बार पुरुषों के लिए स्पर्द्धा-भाव , शत्रुता-भाव दृष्टिगत होता है , वह क्रिया नहीं , अपितु प्रतिक्रिया है । घर-बाहर सभी जगह उसका द्वितीयक दरजा उसे मानसिक रूप से पीड़ित करता रहता है । हम जो हैं , उससे कुछ भिन्न क्यों होना चाहते हैं ? स्पष्ट है , अपनी वर्तमान स्थिति से हमें संतुष्टि नहीं है । स्त्री जो पुरुष होना चाह रही है , उसका कारण भी यही है । स्त्री को माँ और देवी बनाकर उसका हमने सबसे ज्यादा शोषण किया है । नगरों में भी , जहाँ स्त्री शिक्षित है , नौकरीशुदा है , आत्मनिर्भर है ; परंतु वहाँ भी एक दूसरे प्रकार का शोषण जारी है । घर-परिवार और नौकरी का दोहरा दायित्व , कुछ ही समय में उसकी चेतना और चैतन्य को चाट जाता है । तभी तो "पचपन खंभे लाल दीवारें " (उषा प्रियंवदा) की नायिका सुषमा अपनी सहेली मीनाक्षी से कहती है — " पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूँगी — उसे सीने से लगा रखूँगी .... आज से सोलह साल बाद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कालेज में आओगी , तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी । कालेज के पचपन खंभों की तरह स्थिर , अचल ... । "[2]

तात्पर्य यह कि एक ही समस्या के कई-कई आयाम होते हैं और उसके वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए उन्हीं सभी आयामों को गौरतलब करना पड़ता है ।

(क) सांस्कृतिक समस्याएं : सभ्यता और संस्कृति में अंतर है । सभ्यता समाज का बाहरी ढांचा है । किसी समाज-विशेष में लोग किस तरह रहते हैं , उनके तौर-तरीके , रहन-सहन , खान-पान आदि को सभ्यता के तहत लिया जाता है । जबकि संस्कृति सभ्यता को निर्मित करती है । किसी देश , राष्ट्र या समाज की जो मानसिकता है ; वह संस्कृति है । हमारे यहाँ सत्य , अहिंसा , त्याग , बलिदान प्रभृति महती भावों का प्रारंभ से ही बोलबाला रहा है ; क्योंकि ये हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं । "मातृ देवो भव " , " पितृ देवो भव " , " गुरु देवो भव " , "अतिथि देवो भव " जैसे सूत्र हमारी संस्कृति की प्रकृति को उजागर करते हैं । हमारे यहाँ कहा गया — " तेन त्यक्तेन भुंजिथा " — अर्थात् त्याग के द्वारा भोग । हमारी योग की संस्कृति है , भोग की नहीं ; और योग में सदैव

"त्याग-भावना" निहित है । हमारे दैहिक भोगवादी चार्वाक भी " ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत " कहते हैं ; " ऋणं कृत्वा सुराम् पिबेत" नहीं । इसे कहते हैं संस्कृति का प्रभाव ।

सांस्कृतिक मूल्य मनुष्य को परम शुभ या चरम सत्य की प्राप्ति की ओर उन्मुख करते हैं , इतना ही नहीं , ये प्रतिमान मानव-स्वभाव का परीक्षण करते हुए उसके आंतरिक एवं बाह्य जीवन में , मन और कर्म में समंजन की स्थिति उत्पन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । डा० नगेन्द्र के शब्दों में — " सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्वों से है जो सत्य के संधान और सिद्धि में सहायक होते हैं । जीवन की कल्याण-साधना अर्थात् भौतिक व आत्मिक विकास में योगदान करते हैं तथा सौन्दर्य-चेतना को जागृत एवं विकसित करते हैं । " [3]

मनोरमा सेवर ने अपने ग्रंथ " फ्रायड ओन मेन एण्ड सोसायटी" में लिखा है — " जस्ट लाईक द इण्डिज्युअल सुपर ईगो , द सोसायटी ओल्सो डवलोप्स कल्चरल सुपर ईगो , व्हीच सेट्स अप हाई आईडियल्स एण्ड स्टेण्डर्ड्स एण्ड द फेल्यौर टु फुलफिल थेम इज़ पनिश्ड बाय एनक्साईटी कनसायन्स . " [4] अर्थात् व्यक्ति के सुपर ईगो की भांति समाज का भी अपना एक "सुपरईगो" होता है , जिसके द्वारा उच्च आदर्शों और प्रतिमानों का संगठन होता है और और जिनकी उपेक्षा करने पर व्यक्ति दंडित होता है , कभी कभी आंतरिक पश्चाताप के द्वारा भी । कई बार सामाजिक भय , प्रतिष्ठा या समाज के स्वीकृत प्रतिमानों के खातिर व्यक्ति को कुछ ऐसा करना पड़ता है , जो उसके मन के प्रतिकूल पड़ता हो । इसके पीछे भी वही " सोसियल सुपर ईगो " कार्य करता है ।

इन सांस्कृतिक या नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए राजनीति-शास्त्र के सिद्धांत भी कम उत्तरदायी नहीं है । वस्तुतः हमारे यहां राजा या मुखिया या कबिले का सरदार ही समूहगत चरित्र का निर्देशक होता है । उनका चरित्र ही इनमें प्रतिबिंबित होता है । कहा भी गया है — यथा राजा तथा प्रजा । अतः नीति-सिद्धांतों को राजनीतिक सिद्धांतों से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता । ऐसा करने से उसकी अपूर्णता ही प्रत्यक्ष होगी । आइवर ब्राउन महोदय के मतानुसार — " एथिकल थियरी इज़ इनकम्पलिट विथाउट पोलिटिकल थियरी , बिकोज़ मेन इज़ एन एसोसिएटिव क्रीचर एण्ड

केननोट लिव फुल्ली इन आइसोलेशन . पोलिटिकल थियरी इज़ आइडियल विधाउट एथिकल थियरी बिकोज़ इट्स स्टडी एण्ड इट्स रिजल्ट्स डिपेण्ड फण्डामेंटली ओन अवर स्कीम्स ओफ मोरल वेल्यूज़ , अवर कंसेप्शन ओफ राईट एण्ड रोंग. " स्वातंत्र्योत्तर काल में सांस्कृतिक मूल्यों व प्रतिमानों के घोर संकट के पीछे वस्तुतः हमारी राजनीति का "अनएथिकल" होता जाना ,वेल्यु-बेज्ड राजनीति की अवमानना प्रभृति मुख्य कारण हैं । हमारे सारे राजनीतिज्ञ " " होते जा रहे हैं । 15 मार्च (1991) के " " में मि. एम.वी. कामथ ने हमारे राजनीतिज्ञों को " " कहा है । श्री एस. आर. करंबेकर के शब्दों में कहा जाय तो " अनफोरच्युनेटली , द बिहेवियर आफ द इण्डियन पोलिटिसियन्स ओवर द इयर्स हेज़ बिन सो डेस्पिकेबल एज़ टु मेक अस डाउट वेथर इण्डियन डेमोक्रसी रीटेन्स एनी सेंस आफ एथिक्स ." [5]

अतः यहां कहा जा सकता है कि पिछले सौ-डेढ़-सौ वर्षों में नगरीकरण , औद्योगिकरण , भौतिकवादी चीज़-परस्त चिंतन , पश्चिम का अंधानुकरण , फिल्म और वीडियो का प्रभाव , राजनीतिक मूल्यहीनता , शैक्षिक-भ्रष्टता जैसी प्रवृत्तियों के कारण ग्रामीण-परिवेश में भी सांस्कृतिक संकट का संक्रमण बढ़ रहा है , जिसे स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में परिलक्षित किया जा सकता है ।

अनैतिक यौन-संबंध पहले से चले आ रहे हैं , परंतु अब परिमाणतः उसमें वृद्धि हुई है । पहले चोरी-छिपे होता था और उसमें बहुत-कुछ निबाहने की प्रवृत्ति भी मिलती थी , परंतु अब उसमें उत्तरदायित्वहीन , निर्द्वन्द्व , विशृंखलता तथा स्वच्छंदता बढ़ती जा रही है । पहले घर , परिवार या पट्टी-परहेज बरता जाता था ; परंतु अब इन सारी मर्यादाओं की दीवारें ढहती जा रही हैं । " सूखता हुआ तालाब" के कामरेड मोतीराम अपने ही छोटे भाई की बहू से शारीरिक संबंध रखते हैं , यह पहले बताया जा चुका है ।

"कांचघर" की रत्ना "संच" (तमाशा) की ज़िन्दगी से घृणा करती है । वह एक "घरू" औरत बनना चाहती है । उसके ही शब्दों में कहें तो " आर्ट सीधा होना चाहिए । नाच-गाकर लोगों को खुश करना व्यवसाय हो

सकता है , पर गन्दे इशारों से धन लूटना आर्ट नहीं है । .... वह वेश्यावृत्ति है । " [6] अतः एक भली "घरू" औरत बनने के लिए वह मुकुन्दराव पटेल (एक महाराष्ट्रीयन जमींदार) से विवाह कर लेती है , पर इसके बाद ही मोहभंग की स्थिति उसके सामने आती है , जब वह देखती है कि मुकुन्दराव का उसकी सगी भाभी सखूबाई से अनैतिक घृणित संबंध चल रहा है । सखूबाई का एक होंठ फटा हुआ था , अतः मारोतीराव (उसका पति) उसे कभी दिल से नहीं चाह सका । परिणामतः वह उसे शारीरिक दृष्टि से कभी पूर्णतया संतुष्ट नहीं कर सका । दूसरी ओर उसका गठीला शरीर व कसी हुई जांघें मुकुन्दराव को आकर्षित करती है । अतः वह जब-तब अपना तनाव सखूबाई के द्वारा दूर कर लिया करता है और सखूबाई की सारी जिस्मी सुलगन भी मुकुन्दराव के प्यार के फव्वारे को पाकर बुझ जाती है । इस संबंध में रत्ना कहती है — " तुम्हारी घरू औरतों से तमाशे की औरतें कहीं अधिक भली हैं । .... कई गुना शरीफ । .... उनकी ज़िन्दगी एक साफ-सुथरे ढंग से बीतती है । सबकुछ कांच के गिलास-सा । जिस रंग का पानी होगा , वह उजागर । और तुम्हारे घर ... आबरू-वाले घर , गन्दे पानी की मोरी जैसे , जिसके ऊपर सफेद चमकता हुआ पत्थर रखा रहता है और भीतर सडांध । " [7]

8 गांव में पहले किसी भी व्यक्ति की बेटी पूरे गांव की बेटी समझी जाती थी और उसकी इज्जत गांव की इज्जत समझी जाती थी , परंतु अब इस पवित्र-भावना में भी अवमूल्यन दृष्टिगत हो रहा है । " सूखता हुआ तालाब " के मास्टर धर्मेन्द्र एक तिकड़मी आदमी हैं । इसी उपन्यास के देव-प्रकाश से उसकी दुश्मनी है । धर्मेन्द्र की बहन लीला पड़ोसी गांव के अहिर रामदौना से फंसी हुई है । अतः वे अपने पुत्र को प्रेरित करते हैं कि वह लीला को रामदौना के साथ भगा दें , ताकि मास्टर धर्मेन्द्र का मुंह काला हो । इसे ग्रामीण-जीवन मूल्यों के अधःपतन के सिवाय क्या कहा जा सकता है , जहां एक बाप अपने बेटे को एक घृणास्पद कार्य की प्रेरणा दे रहा हो । और बेटा रवीन्द्र भी बाप की बातों को "हां-हूं " में टाल देता है , इसलिए नहीं कि उसकी दृष्टि में "गांव की बहिन-बेटी " की कोई इज्जत है , बल्कि इसलिए कि रामदौना की अनुपस्थिति में रवीन्द्र भी कभी-कभी लीला पर हाथ साफ

कर लिया करता था । यदि इसे वह रामदौना के साथ भगा दें , तो फिर उसे वह कभी-कभी का "चांस" कैसे मिलेगा ?

जिन अनैतिक यौन संबंधों के पीछे पहले खून-खराबा होता था , लोग मरने-मारने पर उतारू हो जाते थे , अब उनका राजनीतिक प्रयोग होने लगा है । स्त्री पर बलात्कार की घटना को "राग दरबारी" उपन्यास में "राजनीतिक हेण्डग्रिनेड " [8] की उपमा दी गई है । अपने विरोधियों को परास्त करने के लिए राजनीति में इसका प्रयोग किया जाता है । पहले इस विषय में कोई भी स्त्री झूठी गवाही के लिए तैयार नहीं होती थी , क्योंकि उसे वह अपनी इज्जत-असमत का सवाल समझती थी , परंतु अब चंद रूपयों के लिए स्त्रियां इसके लिए भी तैयार हो जाती हैं , जो सामाजिक नैतिकता के अधःपतन का लक्षण है ।

"सूखता हुआ तालाब " में अनैतिक यौन-संबंधों को राजनीतिक लाभ-हानि के लिए भुनाया जाता है । शिवलाल की पुत्री और रामलाल की बहिन कलावती को मास्टर धर्मेन्द्र से गर्भ रह जाता है । मास्टर धर्मेन्द्र शिवलाल का ही पट्टीदार है । इस हिसाब से कलावती उसकी बहिन हुई । पहले ऐसी घटना के हो जाने पर लोग थू-थू करते थे । यहां तक कि ऐसा करने वाला भी किसीको मुंह नहीं दिखाता था , परन्तु मास्टर धर्मेन्द्र को इस घटना से कोई शर्म महसूस नहीं होती । बल्कि शिवलाल का पुत्र रामलाल अपनी ही बहिन की इज्जत के इस प्रश्न को लेकर , उसका राजनीतिक उपयोग करने की दृष्टि से इसका दोषारोपण देवप्रकाश के पुत्र रवीन्द्र पर करता है , क्योंकि देवप्रकाश वहां की ग्रामीण-राजनीति में उनके विरोधी-ग्रुप में आते हैं । गोया विरोधियों को बदनाम करने का एक सुहाना मौका मिल गया । पहले जिन चीज़ों को लोग छिपाने की कोशिश करते थे , अब इनका ऐसा उपयोग होने लगा है । गांव के एक अन्य व्यक्ति जैराम के द्वारा कलई खुल जाने पर रामलाल बड़ी बेशर्मी से कहता है — " आ गांववाले सालों की क्यों छाती फटती है ? धरमेन्दर भैया ने कुछ किया है तो मेरी ही बहन के साथ किया है न ! " [9]

ऐसा लगता है कि अब खून के रिश्ते पानी के हो गए हैं और लोगों की आंख का पानी जाता रहा है । अन्यथा मर जाने वाली बात पर लोग मूछों पर ताव देकर बात न करते । हमारी सांस्कृतिक-चेतना किस रसातल

को जा पहुंची है , उसका संकेत ऐसी घटनाओं से मिलता है ।

पहले प्रत्येक गांव में अपने गांव तथा गांववाले के प्रति एक विशिष्ट प्रकार के अभिमान का भाव मिलता था । जमीन, भैंस , बैल , मकान आदि की खरीद-फरोख्त में भी पहले गांव के व्यक्ति को पूछा जाता था , और थोड़ी कम कीमत मिलती हो , तो भी गांव के व्यक्ति को प्रथम पसंदगी दी जाती थी । परंतु अब थोड़े से अधिक रूपयों की प्राप्ति के लिए इस पुराने मूल्य को ठोकर मारी जा रही है । नागार्जुन के उपन्यास "वरुण के बेटे " मछुआरों के जीवन पर आधारित उपन्यास है । मलाही-गोढ़यारी ग्रामांचल में स्थित ताल-पोखरों में वे परापूर्व से मच्छीमारी का कार्य करते रहे हैं । परंतु गांव के जमींदार थोड़े-से रूपयों की लालच में आकर अब इसे भी बाहर वाले दलालों के हाथ बेचने लगे हैं । व्यक्तिगत मालिकी के होने के बावजूद पहले गढ़-पोखर- चरागाह आदि को बाहर वालों के हाथ बेचा नहीं जाता था । लोग बड़ा मन रखते थे । अपने गांववालों के लिए थोड़ा-सा आर्थिक नुकसान भी उठा लेते थे । परंतु अब तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो " सबकी टकटकी टके की ओर लग गई है । "[10] इस स्थिति का व्यंग्यपूर्ण हृदयिक-पीड़ा की शैली में वर्णन करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है — " राजधर्म , आचार्यधर्म , वीरधर्म सब पर सोने का पानी फिर गया , सब टकाधर्म हो गए । धन की पैठ मनुष्य के सब कार्य-क्षेत्रों में करा देने से , ब्राह्मण-धर्म और क्षात्रधर्म का लोप हो गया ; केवल वणिग्धर्म रह गया ।" [11]

पहले गांव के जमींदार गढ़-पोखर-चरागाह को अपनी पौनी-प्रजा के खातिर छोड़ देते थे , उसमें एक प्रकार का क्षात्रधर्म निहित था । परंतु अब तो सभी वणिग्धर्मावलंबी हो गए । हर बात में लाभ-हानि का विचार । क्षात्रधर्म और वीरधर्म का तो मानो लोप ही हो गया है । "मैला आंचल " के बावनदास की भांति "वरुण के बेटे " के मोहन मांझी ने भी आज़ादी के बाद का एक सपना संजोए रखा था — " गढ़-पोखर का जीर्णोद्धार होगा आगे चलकर और तब मलाही-गोढ़यारी के ग्रामांचल मछली-पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जायेंगे । वैज्ञानिक प्रणाली से यहां मछलियां पाली जायेंगी .... मलाही-गोढ़यारी का एक-एक परिवार गढ़-पोखर की बदौलत सुखी-संपन्न

हो जायेगा । विशाल जलाशयों की इन कछारों में हम किस्म-किस्म के कमलों और कुमुदिनियों की खेती करेंगे । पक्की ऊंची भिंडों पर इकतल्ला सैनिटोरियम बनेगा , फिर दूर-पास के विद्यार्थी आकर यहां छुट्टियां मनाया करेंगे । "[12]

परंतु आज़ादी के बाद मोहन मांझी का सपना भी बावनदास के सपने की भांति बिखर-बिफर टूट-फूट जाता है , क्योंकि गांव के जमींदार लोग इन गढ़-पोखरों को बाहरवालों के हाथ बेच देते हैं । तभी संघर्ष शुरू होता है । भोला खुरखुन , बिसुनी , रंगलाल , छित्तन , नथुनी , नवती , नकछेदी आदि मछुहारे युवक प्रायमरी स्कूल में इकट्ठे होकर सोचते हैं -- " छोड़ा नहीं जाय, गढ़-पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है । जमींदार जलकर लेता था , हम देते थे । नया खरीददार दूसरे-तीसरे गांव के मछुओं को मछलियां निकालने का ठेका देता चलेगा और हम पुश्तैनी अधिकारों से वंचित होकर घूमते फिरेंगे । भला यह भी क्या मानने की बात है । "[13]

"गंगामैया" (भैरवप्रसाद गुप्त) का जमींदार गंगा के कछार की परती भूमि के पट्टे किसानों के नाम लिखाकर उनसे मोटी-मोटी रकमें ऐंठना चाहते हैं । वस्तुतः इस कछार भूमि पर किसानों का सामूहिक अधिकार था और परापूर्व से ये लोग उस पर मौसमी सब्जियां वगैरह उगाते रहे थे । अब जमींदार उसको लेकर किसानों का शोषण करना चाहता है , परंतु मटरू नामक एक जागरूक किसान के नेतृत्व में वे सब संगठित होते हैं । मटरू उन्हें वर्गीय-चेतना से परिचित कराता है । वह किसानों से जमींदारों द्वारा थोपे गए बंदोबस्त का विरोध करने को कहता है । " तुम लोग अपनी रकम वापस मांग लो । साफ कह दो कि हमें जमीन नहीं लेनी । यही होगा न कि एक फसल न बो पाओगे .... अगर एक बार जमींदारों को तुमने धक्का लगा दिया तो तुम्हीं नहीं , तुम्हारे बाल-बच्चे भी उनके शिकंजे में फंस जाएंगे । ... तुम लोग मेरा कहा मानो और मेरा पूरा-पूरा साथ दो । "[14]

पहले गांव के वनांचलों में गरीब-गुरबा लोग बबूल का गोंद इत्यादि बिनते थे । पलाश के पत्ते तोड़ लाते थे । बकरियों का पाला (चारा) तोड़ लाते थे और इन सबके लिए उन्हें केवल परिश्रम करना पड़ता था , पैसे नहीं देने पड़ते थे । परंतु अब तो इन सबके ठेके निकाले जाते हैं । तात्पर्य यह

कि ग्रामीण तबकों में पुराने मानवीय मूल्य चरमरा रहे हैं । स्वार्थ के प्रभंजन में सबकुछ उड़ रहा है ।

केवल मानवीय मूल्य ही नहीं , अपितु कुछ पुरानी मर्यादाएं एवं मान्यताएं भी भहरा रही हैं । पहले छोटे भाई की शादी बड़े भाई के पहले कभी नहीं होती थी , परंतु रामदरश मिश्र कृत "जल टूटता हुआ " उपन्यास में छोटे भाई रामविचार की शादी बड़े भाई रामकुमार के पहले हो जाती है । उसी प्रकार पहले बेटी की कमाई हराम समझी जाती थी , यहां तक कि बेटी के घर का पानी भी नहीं पिया जाता था , परंतु अब इन मूल्यों में भी गिरावट आ रही है । डा० राही मासूम रज़ा कृत उपन्यास " आधा गांव " में बताया गया है कि सईदा का अलीगढ़ पढ़ना और नौकरी करना पहले अब्बूमियां को अखरता था । बेटी के पैसों को वे हराम समझते थे । पर बेटी द्वारा खरीदे गये मातमी लिबास को पहनकर सईदा की मां अब बड़ी शान से मुहर्रम की मजलिसों में जाने लगी है ।

"काला जल " [शानी] के रसूल मुंशी के यहां बड़ी जगमग है । कतार से मोमबत्तियां जल रही हैं और नायलोन की फ्राक-ओढ़नी में उनकी बच्चियां चबूतरे पर धमाचौकड़ी मचा रही हैं , क्योंकि उनकी बड़ी लड़की इधर परदा छोड़कर ग्राम-सेविका की नौकरी करने लगी है और अक्सर जीप में इधर-उधर घूमती-फिरती दिखती है ।[15]

नगरीय परिवेश के उपन्यासों में तो अब ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं , जहां लड़की की कमाई पर परिवार की आजीविका चलती है । उषा प्रियंवदा कृत "पचपन खंभे लाल दीवारें " , लक्ष्मीकांत वर्मा कृत "टेराकोटा", हिमांशु जोशी कृत " छाया मत छूना मन " प्रभृति उपन्यास इसके ज्वलंत उदाहरण हैं । ग्रामीण परिवेश पर शहरी-मूल्यों का प्रभाव भी देर-सबेर पड़ता ही है , अतः जो बातें आज शहर में दृष्टिगोचर होती हैं , समय के कुछ अंतराल के उपरांत ग्रामीण परिवेश में भी दृष्टिगत होने लगेंगी , इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है ।

लड़की व लड़के में अंतर न समझा जाय , यह तो एक अच्छी बात है , परंतु इसे लेकर यदि स्त्री-जाति का शोषण होता है , मां-बाप यदि लड़की की शादी की ओर से बिलकुल निश्चिंत हो जाय , बल्कि चाहने लगें

कि उसका विवाह न हो , तब ~~अनैतिकता~~ नैतिक प्रतिमानों के गिरने की शुरू-आत हो जाती है । शरीर-धर्म की उपेक्षा से अवांछित और गर्हित प्रदेशों की भटकन का प्रारंभ होता है , यह भी एक असंदिग्ध तथ्य है , जिसकी उपेक्षा अवांछनीय है ।

पर्व-उत्सव तथा मेले-ठेले भी ग्रामीण-संस्कृति का ~~के~~ एक मुख्य आयाम है , परंतु नगरीय दबावों के परिणामस्वरूप तथा जिंदगी के निरंतर यांत्रिक होते जाने के कारण ; उत्सवों , पर्वों तथा मेलों का रंग फीका पड़ता जा रहा है । ग्रामीण तबके के शिक्षित लोग पर्वों-उत्सवों पर सबमें शामिल होना शान के खिलाफ़ समझने लगे हैं , क्योंकि वे उसे गंवारपना या हुड़दंग समझते हैं । बुद्धिवादी अभिगम ने हृदय-वृत्तियों की वाटिका को सूखा-सा दिया ~~है~~ है । गांव के इन उजड़ते पर्व-त्यौहारों का वर्णन बड़े ही दर्द के साथ डा० रामदरश मिश्र ने " जल टूटता हुआ " में किया है । यथा — " काश हमारे गांवों की जिन्दगी भी ऐसी ही खुली होती ... हमेशा जीवन में ऐसे ही फागुन बहता रहता । मगर वह अनुभव कर रहा है कि यह खुलापन धीरे-धीरे उड़ता जा रहा है । उसे याद आया अपने बचपन का फागुन । खिचड़ी शुरू होते ही .... सरसों की पीली रंगीनी उगते ही खेतों में , गांवों में एक अटूट मस्ती छा जाती थी , फागुन आने के पहले ही आ जाता था । खेत , पगडंडियां , गांव सभी में एक अल्हड़ मस्ती उ~ने लगती थी , गीतों की फसल झूमने लगती थी , और अब धीरे-धीरे सब खतम हो रहा है , किसीको राग-रंग की फुरसत नहीं , राग-रंग को लोग बेकार की चीज़ समझने लगे हैं । लड़के पढ़ने लगे हैं , शहरों से आते हैं तो अधकचरा शहरीपन लेकर आते हैं । वे समझते हैं कि देहाती राग-रंग असभ्यता है , देहातीपन है , वे सिनेमा के गाने गायेंगे , होली नहीं । वे शरीफ बनने के चक्कर में तटस्थ ~~दृष्टा~~ दृष्टा हो गए हैं , साबुन से धुले उनके शरीर पर कोई गोबर न डालने पाये और देहात के लोग हैं जिन्हें अब अपने काम से फुरसत ही नहीं मिलती , अपने व्यवसाय-धंधे और खेती-बारी के कामों में पिसते रहने और एक-दूसरे से बढ़कर चालाकी करने में उनमें ~~हड़~~ होड़ मची है । अब वे जिंदगी के राग-रंग को अढ़ुओं और निकम्मों का काम समझने लगे हैं , सौन्दर्य और आनंद इनके हाथ से छूटता जा रहा है जो पहले के लोगों की अभावग्रस्त जिंदगी में भी एक उल्लास और मूल्य भरता था । अब

तो एक-दूसरे की जमीन लिखाने में , एक-दूसरे का खेत बढ़कर जोत लेने में , एक-दूसरे से बढ़कर संचय करने में , स्वार्थ साधने में , अपकार करने में , एक-दूसरे को पीछे छोड़ना चाहते हैं , लोग पूरे बनिया हो गए हैं , कुली हो गए हैं । बनियागिरी और कुलीगिरी ही इनके जीवन का मूल्य बनती जा रही है और इनके अपढ़ या पढ़ते हुए बच्चे इनकी छाया में व्यक्तित्वहीन होकर इनकी बनियागिरी और कुलीगिरी के निर्जीव यंत्र बन जाते हैं .... पहले जो पर्वों-त्यौहारों और गांव के उत्सवों में सम्मिलित रूप से भाग लेने का उत्साह था वह आज मूल्यहीन मान लिया गया है । लोग इन अवसरों पर दो क्षण के लिए फर्ज-अदायगी के तौर पर शामिल होते हैं और तब भी उनका मन अपने स्वार्थ में ही अटका होता है । लड़की की शादी हो रही है पर पट्टीदार खेत में काम कर रहे हैं और शाम को बारात आने के समय फर्ज-अदायगी के लिए पट्टीदार के यहां जाते हैं , हाजिरी देकर चले आते हैं और हर आदमी अब अपने अकेले×कन्धे×पर -अपने उत्सवों के कामों का बोझ अकेले कन्धे पर उठाये छटपटाता है , ये उत्सव , उत्सव न रहकर , अब बोझ बनते जा रहे हैं , सामूहिकता खंड-खंड में बंटकर इकाइयों में छटपटा रही है । "[16]

शहरी मूल्यों के दबाव तथा साम्प्रतिक व्यस्तताग्रस्त यांत्रिकता के कारण गांव के मेले-ठेले भी अब उल्लासहीन होते जा रहे हैं । "अलग अलग वैतरणी " में कहा गया है — " मेला भी एक ऐसा ही है पंडित । करैता का मेला पूरी वरवण का मेला है । " [17] परंतु जब जीवन का रूप ही बदल गया , यांत्रिकता ने मनुष्य के मन को ही मार दिया , तो उत्साह और उमंग की फगुनाहट भी दूध में मठे-सी फट गयी ।

गुलशेरखान "शानी" के उपन्यास " साप और सीढ़ी " में मेजापदर के मैदान में लगने वाले बाली के मेले का वर्णन आता है जो तीन महीने तक चलता था । वह सचमुच में यौवन का , वसंत का , ज्वार का मेला होता था । इस मेले का एक चित्र दृष्टव्य है — " दूकानें ... कतार-दर-कतार दूकानें । शहर की भी , गांव की भी । चूड़ी-फुंदने से लेकर चने-मुर्रे तक । मुर्गी से लेकर मोहनपुर की भैंस तक । चारपाई के बानों से लेकर भगत चमार तक । फुलोआता के मटकों से लेकर फुलबाहरी तक । कई गैस-बत्तियां जल रही हैं । कई नौटंकियां चली हैं । कई चक्करदार झूले पड़े हैं । लड़कियां , लड़कियां , असंख्य लड़कियां ।

युवक और अनगिनत युवक । जोड़े और जोड़े ही जोड़े । गीत और एक नहीं ; लैंजा, ठुमरी , रोसौना , रावनबैलो , चइतपरब और बीसियों गीत । लाल और असंख्य साड़ियों में मचलता हुआ यौवन , पटा हुआ जवान मैदान , और सैंकड़ों देव-धामियों की रंग-बिरंगी झण्डियों से ढंका हुआ आकाश । " 18

मेले अब भी होते हैं :, परंतु अब वहां लुच्चई, नंगई , दंगई और गुण्डागर्दी खुलेआम होती है ; जिसे हम "राग दरबारी" , "अलग अलग वैतरणी " , "नदी फिर बह चली " प्रभृति उपन्यासों में देख सकते हैं ; जिनमें सनीचर जैसे लोग स्त्रियों की छातियों के हाल-चाल लेने ही पहुंचते हैं । यहां ज्ञान-चन्द्र गुप्त का यह मत उल्लेखनीय रहेगा कि "गांव का पढ़ा -लिखा वर्ग इन मेले-तमाशों में एक अजनबी-सा दृष्टिगत होता है । " 19

जो स्थिति पर्व-उत्सवों और मेलों की है , गालिबन वही स्थिति भजन-कीर्तन-कथा इत्यादि की भी है । कबीर , मीरा , दादू , कमाल , पलटू आदि संतों के भजनों के स्थान पर अब गांव के भजनों में फिल्मी धुनें चलने लगी हैं । कहीं-कहीं तो एकाध शब्द के हेर-फेर से भजन बना लिया जाता है । नीचे दो उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं , जिससे यह अंतर स्वयमेव सिद्ध हो जायेगा । एक उदाहरण है प्रेमचन्द कृत ~~रंग~~ " रंगभूमि" उप-न्यास का और दूसरा है "राग दरबारी" का — "लोगों ने अपने-अपने साज संभाले और भजन होने लगा । सूरदास की सुरीली तान आकाश-मण्डल में यों नृत्य करती हुई मालूम होती थी , जैसे प्रकाश ज्योतिजल के अंतःस्थल में नृत्य करती है — " झीनी-झीनी बीनी चदरिया । काहे के ताना , काहे की भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ..... दास कबीर जतन से ओढ़ी , ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया । " 20

"राग दरबारी " का भजन है —

" लेके पहला-पहला प्यार , तजके ग्वालों का संसार
मथुरा-नगरी में आया है कोई बंसीधर " 21

गांवों में बढ़ रहे इस सांस्कृतिक संकट को "राग दरबारी" में व्यंग्यात्मकता के माध्यम से उकेरा गया है । "परोपकार" जैसे उदात्त-भाव की क्या स्थिति हो गई है , उसे दुरबीनसिंह डकैत वाले प्रसंग में देखा जा

सकता है । हमारे यहां " गोश्त और शराब देखकर भी " नहीं कहने वाला आदमी" सदाचारी कहलाता है । " [22] इस प्रतिमान से दुरबीनसिंह एक सदाचारी व्यक्ति थे । स्वयं लेखक के शब्दों में " स्वभाव से वे बड़े परोपकारी थे । परोपकार एक व्यक्तिवादी धर्म है और उसके बारे में हर व्यक्ति की अपनी-अपनी धारणा होती है । कोई चीटियों को आटा खिलाता है , कोई अविवाहित प्रौढ़ाओं का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए अपने मत्थे पर " प्रेम करने के लिए हमेशा तैयार " की तख्ती लगाकर घूमता है , कोई किसी को सीधे रिश्वत न लेनी पड़े इसलिए रिश्वत देनेवालों से खुद संपर्क स्थापित करके दोनों पक्षों के बीच दिन-रात दौड़-धूप करता रहता है । " [23]

पहले गांवों में बड़े-छोटों का लिहाज़ रखा जाता था । गुरुजन तथा बड़ों के सामने छोटे मुंह नहीं खोलते थे , परंतु "राग दरबारी" में ये सारे मूल्य गड़बड़ा गए हैं । "राग दरबारी" का रूप्पन कोलेज के प्रिंसिपल का बिलकुल लिहाज़ नहीं करता । वैद्यजी जब प्रिंसिपल साहब को भंग के लिए आग्रह करते हैं , तब वे विनयपूर्वक कहते हैं इसे शाम के लिए छोड़ा जाय क्योंकि वे कोलेज का काम छोड़कर आए हैं । इस पर रूप्पन फब्ती कसते हुए कहता है -- " कोलेज को तो आप हमेशा छोड़े रहते हैं । वह तो कालिज ही है जो आपको नहीं छोड़ता । " [24]

यही रूप्पन अपने पिताजी की हेठी बात करने में भी किसी प्रकार की झेंप को महसूस नहीं करता । एक स्थान पर वह रंगनाथ को कहता है -- " पिताजी क्या खाकर नाराज़ होंगे । उनसे कहो , मुझसे सीधे बात तो कर लें .... उनकी शादी चौदह साल की उमर में हुई थी । पहली अम्मा मर गई तो सत्रह साल की उमर में दूसरी शादी की । साल भर भी अकेले रहते नहीं बना । .... यह तो किया कायदे से , और बेकायदे का कितना किया , सुनोगे वह भी ... । " [25]

इसी उपन्यास का छोटू पहलवान अपने पिताजी की पिटाई करता है । इस पर सनीचर उसे समझाते हुए कहता है कि आखिर कुशहर ने उसे पैदा किया है । पाला-पोसा है । तिस पर भुनभुनाते हुए छोटू कहता है -- " कोई हमसे इस्टाम्प लगाकर दरख्वास्त दी थी कि हमें पैदा करो ।

चले साले कहीं के पैदा करने वाले ! " 26

अभिप्राय यह कि ग्रामीण-परिवेश से पुराने सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और यह प्रक्रिया दिन-ब-दिन तेज़ होती जा रही है ।

(ख) शैक्षिक समस्याएं

स्वातंत्र्योत्तर काल के ग्रामीण-परिवेश में शिक्षा-संबंधी समस्याएं अधिक सूक्ष्म, जटिल एवं राजनीतिक होती जा रही हैं । शिक्षा का क्षेत्र राजनीति से सर्वथा अछूता होना चाहिए, परंतु आजकल उसमें सबसे ज्यादा राजनीति चल रही है । शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है । शिक्षा-संस्थाएं संस्थाएं गायों को दुहने के लिए राजनीतिज्ञों ने उन्हें हथिया लिया है । आजकल ऐसे-ऐसे एम.एल.ए. एवं सांसद मिलते हैं, जिनकी कई-कई शिक्षा-संस्थाएं स्कूलें व कालिजें चलती हैं । पहले कभी यह कहा जाता था कि फलां सेठ की इतनी-इतनी मिलें हैं, अब उसी तर्ज़-बयानी पर कहा जाता है कि फलां राजनेता के पास इतनी-इतनी स्कूलें व कालिजें हैं । शिक्षा-संस्थाओं द्वारा दुही गई संपत्ति से वे मालेतुजार होते जा रहे हैं, जिससे सत्ता को खरीदकर फिर उस सत्ता से और नयी-नयी संस्थाएं खड़ी करते जा रहे हैं । जो अंग्रेजी का एक वाक्य सही-सही नहीं बोल सकते[27], वे अंग्रेजी स्कूलें खड़ी कर रहे हैं और "रोड़पति" से "करोड़पति" होते हुए शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्रों पर मंडरा रहे हैं । शिक्षकों की नियुक्ति से लेकर हर छोटी-बड़ी चीज़ की खरीदी में उनकी "शायकी" निश्चित है ।

राजनीति में होने या राजनीति से संलग्नित होने के कारण, वे शिक्षा-तंत्र के ऐसे नीति-नियम निर्धारित करते हैं, जिनसे अधिकाधिक लाभ उन्हें ही होता है, बल्कि यों कहना सर्वथा उचित होगा कि वे नियम ही ऐसे बनाते हैं, जिससे उनकी दोहन-वृत्ति को फायदा हो । उदाहरण के तौर पर गुजरात में पिछले कई वर्षों से प्रभावी "माध्यमिक-शिक्षण-बोर्ड" को ही लें, तो बात समझ में आ जायेगी । शिक्षकों की नियुक्ति की चयन-समिति में इस बोर्ड के सदस्य भी होते हैं, फिर वे सदस्य क्लर्क या चपरासी ही क्यों न हो । हाईस्कूल या हायर सेकण्डरी स्कूल के शिक्षक की नियुक्ति और साक्षात्कार लेने

वालों में क्लर्क या चपरासी । कितनी बड़ी विडंबना । बोर्ड का जो भी व्यक्ति ऐसी चयन-समिति में जाता है , उसे टैक्सी का किराया , डी.ए. , टी.ए. सरकार से तो मिलता ही है , टेबिल के नीचे से एक पांच हज़ार का पैकेट भी मिलता है । यह बात आज आम हो गई है कि गुजरात में शिक्षक की एक नियुक्ति में चालीस हजार से लेकर साठ हजार या लाख तक की रकम ली जाती है , जिसके कारण वैद्यजी (राग दरबारी) , महीपसिंह (जल टूटता हुआ) , जैपाल-सिंह (अलग अलग वैतरणी) जैसे लोगों की चांदी होती जा रही है ।

शिक्षा के क्षेत्र में आये दिन जो प्रयोग होते हैं , उससे भी ग्रामीण-शिक्षा को बड़ा नुकसान पहुंच रहा है । पुरानी पद्धति को छोड़कर 10 + 2 +3 की जो नयी पद्धति अपनाई गयी है , उससे ग्रामीण सर्वहारा वर्ग को लाभ के स्थान पर हानि हुई है । यह समझ में नहीं आता कि आंकड़ों को घटा-बढ़ा देने से शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन कहां से उपस्थित होगा ? पहले 11 + 1 +3 था । बस योग पंद्रह का होना चाहिए । पुरानी पद्धति में तो कभी कोई इक्का-दुक्का गरीब प्रतिभाशाली विद्यार्थी चाहे तो "विज्ञान-प्रवाह " में जा सकता था , परंतु इस नयी पद्धति में उसका वह रास्ता भी बन्द हो जाता है , क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में "विज्ञान-प्रवाह " की अच्छी स्कूलें नहीं के बराबर हैं , और गरीब बच्चे को तो वही शिक्षा लेनी है जो उसे उसीके गांव में मिलती है । अमीरों के बच्चे तो कहीं भी जा सकते हैं । फलतः अधकचरे अधपढ़े लोगों की भीड़ में शुमार हो रहा है । अनुपजाऊ ऊसर भूमि से "राग दरबारी " ~~xxx~~प-न्यास का "कृषि-विज्ञान-विभाग " चल रहा है ।

अभी थोड़े समय पहले गुजरात के मुख्यमंत्री श्री चीमनभाई पटेल ने कहा कि प्राथमिक स्कूलों से परीक्षाओं को बिलकुल खत्म कर दिया जायेगा । यदि ऐसा हुआ तो प्राथमिक शिक्षा भी खत्म हो जायेगी । इस समय गांवों की प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक अधिकांशतः नहीं पढ़ाते । पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया गया है कि ऐसे शिक्षकों को गांव के प्रभु-वर्ग द्वारा न केवल संरक्षण , बल्कि प्रोत्साहन मिलता है , क्योंकि उन गरीबों के बच्चों को न पढ़ाकर प्रकारान्तर से वे उनके ही हितों का संरक्षण कर रहे हैं । प्रभु-वर्ग के बच्चे तो शहरों में अच्छी स्कूलों में पढ़ते हैं ।

बकौल मोहन राकेश के शिक्षक का व्यवसाय तो अब धीरे-धीरे " दुमंजिला मकान " बनाने का व्यवसाय होता जा रहा है ।[28] शिक्षक स्कूल में पढ़ाते नहीं , पर तफरीह के लिए जाते हैं । स्कूल में पढ़ायेंगे तो उनके ट्यूशन का कारोबार कैसे चलेगा ? इस बात का दर्द डा० रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ " में मिलता है — " और सबसे बुरी बात तो यह कि मास्टर लोग ऐसे भर गए हैं , जैसे भेड़-बकरे हों । जिसे कहीं ठिकाना नहीं उसे यहां ठिकाना मिला हुआ है । कोई इस जवार के किसी बड़े आदमी का भाई-भतीजा है , कोई किसी का संबंधी है , कोई किसी मेम्बर का कुछ लगता है और सभी लोग अपनी मरजी से आते हैं , टांग पसारकर कुरसी पर लेटते हैं ।[29] "

इसी उपन्यास में यह भी बताया है कि मास्टर उमाकांत पाठक योग्य और मेहनती हैं और उनकी इसी योग्यता के कारण ही सब लोग उन्हें निकालना चाहते हैं । स्कूल का सेक्रेटरी लालमणी भी उमाकांत से नाराज़ था क्योंकि वह उसकी धाक नहीं मानता था । भला एक सेक्रेटरी की बात को हेड-मास्टर न माने यह कितनी गलत बात है ?[30]

"राग दरबारी" के मास्टर मोतीराम वैद्यजी के खास आदमी है , अतः उन्हें प्रिंसिपल भी कुछ नहीं कहते । पढ़ाते-पढ़ाते वे अपने खेतों तथा आटा-चक्की की ओर निकल जाते हैं । लड़के क्लास में हुड़दंग मचाते हैं । इस बात पर डाँट मास्टर मालवीय को पड़ती है । यथा — " मैं सब समझता हूं । तुम भी खन्ना की तरह बहस करने लगे हो । मैं सातवें और नवें का फर्क समझता हूं । हम का अब प्रिंसिपली करै न सिखाब भैया । जौनु हुकुम है , तौनु चुप्पै कैरी आउट करौ ।समझयौ कि नाहिं ? "[31] स्कूल का क्लर्क भी मालवीय को ही उपदेश देता है — " सरकारी बसवाला हिसाब लगाओ मालवीय । एक बस बिगड़ जाती है तो सब सवारियां पीछे आनेवाली दूसरी बस में बैठा दी जाती है । इन लड़कों को भी वैसे ही अपने दरजे में जाकर बैठा लो । "[32]

प्रिंसिपल हमेशा मालवीय और खन्ना के पीछे पड़े रहते हैं क्योंकि वे विरोधी ग्रुप के हैं । एक स्थान पर विद्यार्थियों के सामने ही मास्टर खन्ना को भला-बुरा कहते हुए प्रिंसिपल साहब कहते हैं — " आपके दरजे में डिसिप्लीन की यह हालत है । लड़के सिनेमा की पत्रिकाएं पढ़ते हैं । और आप इसी बूते पर

जोर डलवा रहे हैं कि आपको वाइस प्रिंसिपल बना दिया जाय । इसी तमीज़ से वाइस प्रिंसिपली कीजिएगा । भइया , यहे हालु रही तौ वाइस प्रिंसिपली तो अपने घर रही , पारसाल की जुलाई माँ डगर-डगर घूम्यौ । ... पढ़ाई - लिखाई में क्या रक्खा है ।[33] असली बात है डिसिप्लिन । समझे , मास्टर साहब ? "[34]

ये प्रिंसिपल महोदय केवल दो बातों में उस्ताद थे । विभिन्न स्कीमें बनाकर सरकार से अधिक से अधिक पैसा ऐंठना और येन-केन-प्रकरेण अपना स्थान सुरक्षित रखना । एक स्थान पर बाबू रंगनाथ से वे कहते हैं — " अभी प्रिंसिपली में यह मुसीबत नहीं है और जहाँ वैद्यजी मैनेजर हों , वहाँ तो समझ लो कि प्रिंसिपल पूरा बबरशेर है । हमें किसीकी खुशामद से मतलब नहीं । वैद्यजी का पल्ला पकड़े बैठे हैं और सबसे जूतों से बात करते हैं । क्या खयाल है , बाबू रंगनाथ ? .... गू खाय तो हाथी का खाय । हमारा तो बस यही है कि वैद्यजी की खुशामद कर लो पर हर एक के आगे सर झुकाने को तैयार नहीं है ।"[35] ऐसे खुशामदी और टुक्कड़खोर लोगों के हाथों में जब शिक्षा की बागडोर हो तो भगवान ही मालिक है ।

खन्ना-मालवीय आदि कुछ मास्टर कोलेज के उपाध्यक्ष गयादीन से शिकायत करने पहुंचते हैं , परंतु उनकी ठण्डी बातों से निराश हो वापिस लौट आते हैं । उनकी बातचीत से एक उदाहरण प्रस्तुत है — " खन्ना मास्टर ने बात संभाली । बोले " इनके गुस्से का बुरा न मानें । हम लोग सचमुच ही परेशान हैं । बड़ी मुश्किल है । आप देखिए न , इसी जुलाई में उसने {प्रिंसिपलने} अपने तीन रिश्तेदार मास्टर रखे हैं । उन्हीं को हमसे सीनियर बनाकर सब काम ले रहा है । कुनबापरस्ती का बोलबाला है । बताइए हमें बुरा न लगेगा ? ...." बुरा क्यों लगेगा भाई ? ... तुम्हीं तो कहते हो कि कुनबापरस्ती का बोलबाला है । वैद्यजी के रिश्तेदार न मिले होंगे , बेचारे ने अपने रिश्तेदार ही लगा दिये ।" ...." गयादीन वैसे ही कहते गए , मसखरी की बात नहीं । यही आज का जुग-धर्म है । जो सब करते हैं , वही प्रिंसिपल भी करता है । कहाँ ले जाय बेचारा अपने रिश्तेदारों को ? ...." तुम तो इतिहास पढ़ाते हो न मास्टर साहब ? सिंहगढ़-विजय कैसे हुई थी ?" ...." मैं ही बताता हूं । तानाजी क्या लेकर गये थे ? एक गोह । उसको रस्से से बांध लिया और

क़िले की दीवार पर फेंक दिया । अब गोह तो अपनी जगह जहाँ चिपककर बैठ गई, वहाँ बैठ गई । साथ वाले सिपाही उसी रस्से के सहारे सड़ासड़ छत पर पहुंच गये । .... वही हाल अपने मुल्क का है, मास्टर साहब ! जो जहाँ है, अपनी जगह गोह की तरह चिपका बैठा है । टस-से-मस नहीं होता । उसे चाहो जितना कोंचो, चाहे जितना दुरदुराओ, वह अपनी जगह चिपका रहेगा और जितने नाते-रिश्तेदार हैं, सब उसकी दुम के सहारे सड़ासड़ चढ़ते हुए ऊपर तक चले जायेंगे । " 36

इसी उपन्यास में एक स्थान पर यह बताया गया है कि एक अधिकारी को अचानक सनक सवार होती है कि कालिज का निरीक्षण किया जाय क्योंकि उन्होंने पिछले अड़तालीस घण्टों में कोई भाषण नहीं दिया था । उनके कालेज में आते ही छुट्टी हो गई । लड़के दर्जों से बाहर आकर मैदान में बैठ गये । स्थानीय हाकिम, बागों में कौड़ियां खेलने वाले जुआड़ी, ताड़ी-घर पर बैठे ज्वार के शोहदे — वे भी बात-की-बात में मौके पर आ गये । अच्छी-खासी मीटिंग हो गई । लड़कों के होने का प्रत्यक्ष लाभ यह है कि उन्हें कमरों के अन्दर रखो तो कालिज हो गया, और बाहर रखो तो मीटिंग हो गई । फिर उन्होंने लड़कों को बताया कि वे देश के भविष्य हैं और मास्टरों को बताया कि वे देश के भविष्य -निर्माता हैं । लड़के और मास्टर यह पहले से ही जानते थे । फिर उन्होंने लड़कों को डांटा कि उनमें संयम की कमी है, वे अड़तालीस घंटे तो क्या, आठ घंटे भी चुप नहीं रह सकते । फिर मास्टरों को डांटा कि वे उन्हें संयम नहीं सिखाते । उन्होंने शिकायत की कि लड़के राष्ट्र-ध्वज, राष्ट्रगान आदि के बारे में कुछ नहीं जानते और मास्टर यह जानकर भी मंहगाई भत्ता और अधिक वेतन मांगते हैं । मास्टर और लड़के अपने बारे में कुछ सोच भी न पाये थे कि वे उस विषय पर उतर आये, जिस पर प्रत्येक व्याख्यानदाता शिक्षा-संस्थाओं में जरूर बोलता है .... उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है और इस शिक्षा को पाकर लोग क्लर्क ही बनना चाहते हैं । उन्होंने लड़कों को सुझाव दिया कि इस शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन की ज़रूरत है । उन्होंने सैकड़ों विद्वानों और हजारों समितियों का हवाला देकर बताया कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है । उन्होंने विनोबा का और यहो तक कि गांधीजी का हवाला दिया । तब कालिज के मैनेजर वैद्यजी

ने भी सर हिलाकर कहा है कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है । उसके बाद सर हिलाकर प्रिंसिपल , अन्य मास्टर और बाजार के घूम क्लर्कों और शोहदों तक ने इस बात का समर्थन किया । उनकी बात से ताड़ी पीने वालों और जुआड़ियों तक को पूरा इतमीनान हो गया कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है । ..... उन्होंने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में पिछली शताब्दी की यह एक असाधारण उपलब्धि है कि हम इतनी जल्दी जान गये कि हमारी शिक्षा-पद्धति खराब है । फिर उन्होंने लड़कों को खेती करनी चाहिए , दूध पीना चाहिए , स्वास्थ्य बनाना चाहिए और भविष्य का नेहरू और गांधी बनने के लिए तैयार रहना चाहिए -- ये सब बातें बतायीं , जो लड़के उनको भी बता सकते थे । इसके बाद समन्वय , एकता , राष्ट्रभाषा का प्रेम -- इस सब पर एक-एक अनिवार्य जुम्ला बोलकर , कालिज की समस्याओं पर विचार करने का सालाना वादा करके , सेवा के बाद तत्काल मिलने वाली मेवा खाकर और चाय पीकर वे फिर सत्तर मिल की रफ्तार से आगे बढ़ गये । " [37]

यहां पर सपाट बयानी से लेखक ने व्यंग्य का काम लिया है । शिक्षा-विभागों में कैसे-कैसे लोग हैं , और वे कैसे-कैसे काम करते हैं , निरीक्षण कैसे होता है , आदि बातों से शिक्षा-जगत की वास्तविकता सामने आती है । शिक्षा-सुधार के नाम पर जो कुछ भी होता है , उससे ग्रामीण-तबके की शिक्षा में और गिरावट आती है क्योंकि यही उसका उद्देश्य भी होता है ।

अपने व्यवसाय के प्रति प्रतिश्रुतता खत्म हो रही है । नाते-रिश्तेदार , गांववाले या फिर पैसे लेकर लोगों को शिक्षकों के रूप में नियुक्त किया जाता है । " सूखता हुआ तालाब " के मास्टर धर्मेन्द्र अपनी जमींदारी भी संभालते हैं और मास्टरगिरी भी करते हैं । एक तरफ गांव की चमारिन चेनइया से भी उनके शारीरिक संबंध हैं , तो दूसरी तरफ अपनी ही पट्टीदारी में रिश्ते में बहिन लगने वाली शिवलाल की पुत्री कलावती को भी उनसे गर्भ रहता है । " अलग अलग वैतरणी " के मास्टर जवाहरसिंह अपने ही शिष्य रामचेलवा से पत्नी का काम चलाते हैं । जब शिक्षकों का यह हाल है , तो शिक्षा के स्तर का कहना ही क्या !

शिक्षकों को पूरी तनख्वाह नहीं दी जाती ।[38] कहीं-कहीं पर कई-कई महीनों तक पगार नहीं की जाती ।[39] " जल टूटता हुआ " के उमाकांत

जैसे अच्छे शिक्षकों को टिकने नहीं दिया जाता । "राग दरबारी" उपन्यास में भी यही बताया है कि मालवीय , खन्ना वग़ैरह कुछ प्रबुद्ध हैं ; परंतु स्थानीय राजनीति के कारण वे भी उसीमें डूबे रहते हैं और कुछ कारगत नहीं हो पाता । अंत में धाक-धमकी से उनका भी त्यागपत्र धरवा लिया जाता है ।

"राग दरबारी" तथा "जहर चाँद का " जैसे ग्रामीण समस्याओं पर आधारित उपन्यासों में ग्रामीण-क्षेत्रों में होनेवाली "सामूहिक कापिंग " को भी रेखांकित किया गया है । "कोपिंग" को एक अधिकार समझा जा रहा है । ग्रामीण-क्षेत्रों की कुछ शिक्षा-संस्थाओं में तो अब उनके द्वारा ही "कापिंग " की व्यवस्था की जाती है । जो अधिकारी निरीक्षण पर आते हैं (स्कूलों के लोग) उन्हें साम-दाम-दण्ड-भेद से समझा लिया जाता है । अतः नगर के भी बहुत-से विद्यार्थी (या परीक्षार्थी ?) अब ग्रामीण-क्षेत्र के केन्द्रों से परीक्षा देना पसंद करते हैं ।

(ग) मनोवैज्ञानिक समस्याएं

ग्रामीण-परिवेश में बौद्धिक-जटिलता का समावेश कम होने के कारण बनिस्बत शहर के मनोवैज्ञानिक समस्याएं कम होती हैं , परंतु होती अवश्य हैं । कई बार देखा गया है कि जो समस्या बाह्यतः सामाजिक , आर्थिक वा अन्य प्रकार की लगती है ; सूक्ष्मतया देखने पर उसका उत्स मन की किसी अनबूझ गुत्थी में दृष्टिगत होता है । पूर्ववर्ती विवेचन में "धरती धन न अपना " के काली के आर्थिक आयामों को विश्लेषित करते हुए इंगित किया गया है कि उसके कतिपय आर्थिक व्यवहारों के मूल में उसके मन पर पड़ी हुई कुछ ग्रंथियां कारणभूत हैं ।

काली में जो कुण्ठा (Complex) है , वह जातिगत कुण्ठा है । घोड़ेवाहा गांव के चमारों पर परापूर्व से अत्याचार होते रहे हैं । उनके अत्याचारों से तंग आकर काली शहर भाग जाता है , और वहां से कुछ बनकर , कुछ कमाकर आता है । अब काली में यदि जातिगत कुण्ठा न होती तो "सबहिं नचावत राम गोसाईं " के मेवाराम की भांति पैसे से पैसा बनाते हुए अपनी जोड़ी हुई कमाई में और इज़ाफा करते हुए अपनी आर्थिक स्थिति को संपन्नता की ओर ले जा सकता था । परंतु जातिगत कुण्ठा के कारण कमाई के एक

बड़े भाग को ईंट-गारे के पक्के मकान में वह खर्च कर डालता है । ईंट-गारे का मकान , उसका बरसों का संजोया हुआ सपना है । ग्रामीण तबके की निम्न जातियों में ऐसा मकान प्रतिष्ठा का प्रतीक (status symbol) बना हुआ है । अतः अपने लोगों में कुछ विशिष्ट पहचाने जाने के मोह में काली अपनी कुछ अच्छी-खासी रकम खर्च कर डालता है । उच्च जाति के लोगों में ऐसी दिखावे की प्रवृत्ति कम दृष्टिगत होती है ; क्योंकि समाज में उनका स्थान पहले से ही ऊंचा है । अतः उन्हें ऐसे दिखावे की आवश्यकता नहीं रहती है । जबकि निम्न जातियों में यह प्रदर्शन-वृत्ति सविशेष पाई जाती है , क्योंकि अपनी समाजगत निम्न-श्रेणी की क्षति-पूर्ति वे इस ढंग से करना चाहते हैं । इसके कारण उनमें फिजुलखर्ची भी आती है । अन्य चमार जहां गुड़ की चाय पीते हैं , वहां काली सक्कर पीता है । बीडी के स्थान पर सिगरेट पीता है । परंतु यह उछल-कूद थोड़े दिनों की है । कुछ ही दिनों में वह जीतू और मंगू की पंक्ति में आ बैठता है । छज्जू शाह ठीक ही कहता है — " चमार की खुशहाली उसकी जवानी की तरह चार दिन की ही रहती है । " 40

"बगुला के पंख " (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) का जुगनू एक दलित जाति का (भंगी जाति का) व्यक्ति है । मिनिस्टर होने के उपरांत वह अपने सहायक शोभाराम की पत्नी को अपनी वासना का शिकार बनाता है । शोभाराम की पत्नी पद्मा के पश्चात् वह गोमती नामक एक अन्य उच्च-जातीय स्त्री से भी यही करता है । वह उच्च जाति की सम्भ्रान्त कन्या शारदा से विवाह करना चाहता है । उसके इन सब कार्य-कलापों के मूल में भी वही जातिगत कुण्ठा है ।

"अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल " में मोहन मेहतर की मांई निर्गुनिया के साथ जो दुर्व्यवहार करती है । उससे अपना मैला उठवाने की जिद ठान लेती है , और अंततः निर्गुनिया को वह घृणित कार्य भी करना पड़ता है । उसके पीछे भी यही कुण्ठा कार्य करती थी , क्योंकि निर्गुनिया एक उच्च जाति की स्त्री होने के कारण , उससे यह सब करवाके मोहन की मांई अपनी अंतःचेतना में दबी उस वर्ग के प्रति की घृणा को संतुष्ट करती है ।

इसी जातिगत कुण्ठा से जुड़ा हुआ एक आयाम है — धर्म-परिवर्तन (conversion) । अस्पृश्यों पर थोपी गई सामाजिक, आर्थिक वा सांस्कृतिक निर्योग्यताओं (disabilities) से समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग निरक्षर, विवेकहीन और चेतनाशून्य हो गया जो समाज और राष्ट्र की प्रगति में सक्रिय योग नहीं दे सका । लाखों-करोड़ों अस्पृश्य लोगों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर नहीं मिला और अभावग्रस्त एवं तिरस्कृत जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा । संस्कृति और धर्म के नाम पर लाखों-करोड़ों लोगों का आर्थिक-नैतिक शोषण हुआ है । उन्हें सब प्रकार की सुविधाओं से वंचित रखते हुए पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया गया । कुछ लाभप्रद व्यवसायों पर उच्च जातियों का ही एकाधिकार रहा है । गन्दे और घृणित समझे जाने वाले कार्यों में ही उन्हें लगाए रखकर बदले में भोजन की बची-खुची जूठन, फटे पुराने वस्त्र और टूटी-फूटी झोंपड़ियां देकर उनके प्रति घोर अन्याय किया गया है । आज जब कि इन लोगों को कानूनी तौर पर संरक्षण और कुछ सुविधाएं प्राप्त हुई हैं, तो सवर्णों एवं अवर्णों में (अगड़ों और पिछड़ों) एक तनाव और संघर्ष की स्थिति खड़ी हो गई है । महात्मा गांधी ने कभी लिखा था कि जो लोग अछूतों के राजनीतिक अधिकार की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते और हिन्दू समाज आज किस प्रकार का बना हुआ है, इसे नहीं जानते ।[41]

अतः अपने ऐसे दुःखी जीवन से निराश हो लाखों अस्पृश्य लोगों ने इस्लाम और ईसाई धर्म को अंगीकार कर लिया है । कोई "कलिया" "करीम बख्श" ऐसे ही नहीं बनता है । शोषण, अत्याचार और अन्याय की एक लंबी प्रक्रिया इसके लिए उत्तरदायी है । जब एक समाज के आमूल सोच में अंतर नहीं आता, कायदे-कानूनों से खास कुछ नहीं होता । इंग्लैंड की सोलहवीं शताब्दी की सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए Froude नामक इतिहासकार ने लिखा है कि — " नो लॉज़ व्हीच आर रूलड द लेवल आफ पब्लिक मोरालिटी आर आफ एनी यूज़ टू इट एण्ड द डीपर दे आर केरीड इंटू लाईफ, द लार्जर बिकम द ओपोर्च्युनिटीज़ आफ इवेज़न."[42] अर्थात् सामाजिक नीति के स्तर से उच्च स्तर के बनाए गए विधान समाज के लिए निस्पयोगी होते हैं और उन्हें जितना अधिक क्रियान्वित किया

जाता है उतने अधिक उन्हें टालने के अवसर मिलते हैं । और फिर दूसरी हानि यह होती है कि " बूढ़ी मरी सो मरी , पर मौत ने घर देख लिया " वाली कहावत चरितार्थ होती है । एक बार विधान का उल्लंघन करने का प्रयास सफल हुआ कि उसके पश्चात् जिन विधानों को सरलता से व्यवहार में उतारा जा सकता है उन विधानों का भी उल्लंघन करने की प्रवृत्ति बढ़ती है ।

तीसरी हानि यह होती है कि अच्छे उद्देश्य से किए गए प्रयास भी दुष्परिणामों को जन्म देते हैं । दासता के विरुद्ध अमेरिका द्वारा पारित विधान की क्रियान्विति के संबंध में अपना अनुभव बताते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि " द हिस्टरी आफ द वर्ल्ड× वर्ल्ड टीचिज़ अस थेट व्हेरएवर थेर हेव बीन फैनाटिकल रिफोर्म्स , द ओन्ली रिजल्ट हेज बीन थेट थे हेव बीन डीफिटेड थेयर ओउन एण्ड. नो ग्रेटर अपहिवेल फार द एस्टाब्लिशमेण्ट आफ राईट एण्ड लिबर्टी केन बी इमेजिन्ड थॅन द वार फार द एबोलिशन आफ स्लेवरी इन अमेरिका. यू आल नो अबाउट इट. एण्ड व्होट हेव बीन इट्स रिजल्ट्स ? द स्लेव्स आर ए हण्ड्रेड टाइम्स वर्स टुडे थॅन थे वेर बिफोर एबोलिशन. बिफोर द एबोलिशन थीज़ पुअर निग्रोज़ वेर द प्रोपर्टी आफ समबडी , एण्ड एस प्रोपर्टीज़ थे हेड टू बी लुक्ड आफ्टर , सो थेट थे माइट नोट डीटिरियोरेट. टु डे थे आर द प्रोपर्टी आफ नोबडी. थेयर लाइव्ज़ आर ओफ नो वेल्यू ; थे आर बर्न्ड एलाइव ओन मोर प्रिटेन्सीस. थे आर शोट डाउन विधाउट एनी लो फोर थेयर मर्डरर्स फार थे आर निग्रोज़ , थे आर नोट ह्युमन बीइंग्स , थे आर नोट इवन एनिमल्स ; एण्ड थेट इज़ द इफेक्ट आफ सच वायोलेण्ट टेकिंग अवे आफ इविल बाय लो ऑर बाय फैनिटिज़म . " [43]

अर्थात् संसार का इतिहास हमें बताता है कि जहां कहीं ऐसे जोशीले सुधार किए गए हैं , उनका एक ही फल हुआ है कि उन्होंने अपने लक्ष्य को हानि पहुंचायी है । अमेरिका में दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए जो आंदोलन हुआ न्याय और स्वतंत्रता के लिए उससे भारी आंदोलन की कल्पना नहीं की जा सकती । किंतु उसके परिणाम क्या निकले ? दास-प्रथा के उन्मूलन के पूर्व दासों की जो दशा थी उससे सौ गुना खराब दशा आज है । उन्मूलन के पूर्व ये बेचारे निग्रो लोग किसी-न-किसी निश्चित व्यक्ति की संपत्ति होते थे । उनकी

चिंता की जाती थी कि कहीं यह संपत्ति खराब न हो जाय । आज वे किसी की संपत्ति नहीं है । ज़रा-ज़रा से बहानों को लेकर उन्हें जीवित भून दिया जाता है । उन्हें बिना किसी कारण गोली मार दी जाती है , किन्तु उनके हत्यारों के लिए कोई कानून नहीं है ; क्योंकि उन्हें मनुष्य नहीं समझा जाता । यहां तक कि पशु भी नहीं माना जाता । वे काले आदमी हैं । यह फल निकला है किसी बुराई को कानून या कट्टरवादिता के साथ समाप्त करने का ।

अभिप्राय यह कि जब तक समाज के सर्वांगीण चिंतव व सोच में कोई आमूल परिवर्तन नहीं होगा , तब तक कानून या विधि के सुधारों का कोई अर्थ नहीं होगा । सरकार की जो आरक्षण-नीति है , वह भी बुरी तरह असफल हो रही है , क्योंकि उसे सफल बनाने का दायित्व प्रायः उन लोगों पर आता है , जो मूलतः हृदयपूर्वक इसे मानते नहीं है । केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा । हमारी यूनिवर्सिटी में , अर्थात् महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी में , हिन्दी विभाग में अनुसूचित जाति एवं जन-जाति के दो व्याख्याताओं के स्थान पिछले कई वर्षों से रिक्त पड़े हैं । ऐसा नहीं कि योग्य उम्मीदवार नहीं आते । एक उम्मीदवार तो एम.ए. (प्रथम वर्ग) है । पर साक्षात्कार रिपोर्ट में लिख दिया जाता है — " स्यूटेबल केन्डिडेट इज़ नोट फाउन्ड " । एक बना-बनाया वाक्य लिख दिया जाता है । कोई पूछने वाला नहीं , कोई कहनेवाला नहीं , क्योंकि पूछने वाले और कहने वाले वही हैं जो मूलतः इस नीति के विरोध हैं । इसका परिणाम यह होता है कि निम्न जाति के लोग कुण्ठित होकर अन्य धर्मों का अवलंब ढूंढने लगते हैं । "धरती धन न अपना " का नंदसिंह पहले सिक्ख और बाद में ईसाई हो जाता है , क्योंकि उसे "चमार" शब्द से नफरत हो गई है । परंतु लोग फिर भी उसे चमार ही कहते हैं । उपन्यास के अन्य एक पात्र संता सिंह के अनुसार " सिक्ख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा । धर्म बदलने से जात तो नहीं बदल जाती । " [44]

इसके कारण नंदसिंह "सिक्ख" से फिर "ईसाई" हो जाता है । अपने "ईसाई " होने का लाभ गिनाते हुए वह काली से कहता है कि सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि अब हम चमार नहीं रहे हैं । इतने में ही चौधरी मुंशी कहीं से आ धमकता है और नंदसिंह को गाली देते हुए कहता है — " चमारा, तूने

क्या भंग पी रखी है ? " [45]

निम्न जातिगत कुण्ठा से लघुता-ग्रंथि का जन्म होता है । ऐसे लोगों में प्रदर्शन वृत्ति भी प्रायः बढ़े-चढ़े रूप में मिलती है । " धरती धन न अपना " के नंदसिंह की पत्नी ठाकरी "ईसाई " हो जाने के बाद कुछ ज्यादा ही इतराती है । एक बार जब काली हाथ पर रोटी रखकर खा रहा था , तब उसे रोकते हुए तथा रोटी को प्लेट में देते हुए वह कहती है — " बड़े साहिबों की तरह रोटी खाओ । पादरीजी ऐसे ही खाते हैं । " [46]

उसी प्रकार एक बार काली के यह पूछने पर कि चाची , तू घर में जूता पहनकर क्यों घूमती है ? तब ठाकरी जवाब देती है कि " धुत्तरा , पादरानीजी भी घर में जूता पहने रहती हैं । मैंने सोचा शायद ईसाइयों में ऐसा ही रिवाज है । इसलिए मैंने भी घर में जूता पहनना शुरू कर दिया है । हम जब ईसाई बन गए हैं तो रिवाज भी उन्हीं के करने होंगे । " [47]

उक्त जातिगत कुण्ठा निम्न वर्ग के लोगों में ही पाई जाती है ऐसा नहीं , उच्च-वर्ग के लोगों में भी यह उपलब्ध होती है , परंतु उनकी कुण्ठा उस तथाकथित उच्चता को लेकर होती है । उनमें प्रभुत्व-ग्रंथि (सुपीरियोरीटी कोम्पलेक्स) होती है । " धरती धन न अपना " के हरनामसिंह चौधरी , "जल टूटता हुआ " के महपसिंह , " अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह , "राग दरबारी " के वैद्यजी आदि लोगों में हमें यही प्रभुत्व-ग्रंथि मिलती है । "अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह करैता छोड़कर मीरपुर चले जाते हैं क्योंकि उन्हें निम्न जाति के लोगों के झुके हुए सिर देखने की आदत थी । "राग दरबारी" के वैद्यजी जिस दबंगता से बातचीत करते हैं , उससे उनकी प्रभुत्व-ग्रंथि का परिचय मिलता है । यथा — " आप लोग देश का उद्धार इसी प्रकार करेंगे ? यह "किन्तु , परन्तु " ,"तथापि" — यह सब क्या है ? श्रीमन् , यह नपुंसकों की भाषा है । अकर्मण्य व्यक्ति इसी प्रकार अपने आप को और देश को वंचित करते हैं । आपका निर्णय स्पष्ट होना चाहिए । किन्तु ! परन्तु ! थू ! " [48]

जातिगत कुण्ठा की भांति अर्थगत कुण्ठा भी होती है । जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होता है , उसमें अपनी संपन्नता या वैभव के झूठे प्रदर्शन की वृत्ति सबसे ज्यादा होती है । "टूटा हुआ आदमी"

का धर्मनाथ जब शहर से अपने गांव जाता है , तब सामान की कमी तथा स्टेशन से गांव की दूरी के अधिक न रहने पर भी टांगा करता है । "नदी फिर बह चली " के जगलाल तथा "अलग अलग वैतरणी " के जगेसर में भी यह प्रदर्शन-वृत्ति मिलती है जो उनकी अर्थगत कुण्ठा को द्योतित करती है ।

उक्त जातिगत कुण्ठा और अर्थगत कुण्ठा के अतिरिक्त ग्रामीण अर्धशिक्षित लोगों में शिक्षागत कुण्ठा भी मिलती है । अपनी बातचीत में अंग्रेजी शब्दों तथा वाक्य-खंडों का प्रयोग वे सविशेष करते हैं , खास करके तब , जब वे अनपढ़ लोगों के बीच में होते हैं , ताकि उनकी शिक्षा का प्रभाव उन पर पड़े । शैलेश मटियानी के ग्रामभित्तीय उपन्यास "हौलदार" , "एक मूठ सरसों" "चौथी मुट्ठी" , "चिट्ठीरसैन " , " नागवल्लरी" प्रभृति में इस प्रवृत्ति को लक्षित किया जा सकता है । "हौलदार" का नायक हुंगरसिंह बात-बेबात अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करता रहता है । यथा — " डिसमिस , कन्टूलमेनट , कुक मारच , डबल मारच , लिपटीनंट , हण्डगिरनट , डिसचारज , रिलीज , जिन्टलमिनों , "तुम्हारी आई-सेट " में बहुत विकनैस है , फिट फोर , फिल्डेरिया , फ्रण्टेरिया , डिफरेन्स , "तू बड़ा प्यारा नेफू [भतीजा] है ; " किप क्वाइट कैटली प्रौल , क्वाइट वैट रैट , इक्सप्लैनीशन [49] जैसे शब्दों का प्रयोग पूरे उपन्यास में अनेक स्थानों पर मिलता है । लेखक के शब्दों में — " पहाड़ के जो लोग पल्टन में भरती होते थे , या जो अफसरों के यहां बेयरा होते थे — उन्हें गलत ही सही , अंग्रेजी बोलने में गर्व अनुभव होता था । " [50]

एक स्थान पर हुंगरसिंह एक सिपाही से प्रतिवाद करते हुए कहता है — " नो , यू रौंग — वेरी रौंग , माय डियेर ब्रादर ! .... नथिंग आई मीन टु सी ! ह्वाट ? ... करेक्ट ? मीन टु से ! ... दिस इज ! ... सो दैट , यू वैद नोट एनी क्वैट ! बिकाज , कैट मीनींग व्हाट ? इन अवर होमली लैंगिज पहाड़ी — बिरालू ! एण्ड दैट सो , रैट मीनींग — देयर फोर मुस याने चूहा ! ... सो मैरी डिफरेन्स ! " तात्पर्य यह कि ऐसे लोग सही-गलत अंग्रेजी द्वारा देहातियों पर अपने रुआब का सिक्का गालिब करना चाहते हैं ।

अंग्रेजी के प्रयोग की भांति बातों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की वृत्ति भी उनमें पायी जाती है । "हौलदार" उपन्यास का डूंगरसिंह अपनी ही गलती से टांग तुड़वाकर "डिसमिस" होकर आया है , परंतु गांव में आकर लंबी-चौड़ी हांकने लगता है । अपनी टांग टूटने के कारणों में वह कश्मीर-फ्रन्ट की लड़ाई को उत्तरदायी बताता है , जबकि वास्तविकता यह है कि वह किसी लड़ाई-वड़ाई में गया ही नहीं है । ट्रेनिंग रंगरूटी से "डिसएबल" होकर वापिस आ गया है । जमनसिंह "काकज्यु" के आगे अपनी हेकड़ी जताते हुए वह कहता है — " जमदूत से आठ पठान मेरी छाती पर ... मैंने समझ लिया , हफ्सर ने हाथ में सात जात की मशीनरी वाली रैफल थमाकर , " कुकमारय " क्या कह दिया है , बैतरनी के घाट भेज दिया है । फिर मैंने सोचा , अपना बिनसना आ गया , तो औरों के मुंह क्या देखना ... काकज्यु , मैंने नाम लिया , जै मैया काली का , बरमा की बेटी , इन्दर की साली का , हाथ में खप्परवाली , काली कलकत्ता वाली का , कि मैया , आज वचन न जाय तेरा खाली ... पीठ के पुट्ठ (पलटनिया झौला) से निकाला हण्ड-गिरनट ... धरती पर फेंका , आकाश में हाहाकार ! .... पठानों का न कोई तर्पण करने वाला , न पिंड देने वाला , न नाम-लेवा , न काठ-देवा ! ... पर इस महायुद्ध में एक पठान की गोली मेरे पांव पर भी बैठ गई .... फिर भी मैं लड़ता रहा । शाम को अस्पताल में आंख खोली । हफ्सर कह रहा था — " वैल ! ... " परसों फिर नेहरू महाराजा के दरबार से तार आया — " हौलदार डूंगरसिंह , कुमाऊं बटैलन नम्बर सेवन , जैहिन्द , कश्मीर की लड़ाई .... बहुत ... बहुत बहादुरी ! अभी पांव की बदकिस्मती ... पेन्शन ... रिलीज ... डिस्चारज .... जैहिन्द ... " तार के नीचे खुद नेहरू महाराजा के दसखत थे । " 51

वस्तुतः उसे अपनी गलती से टांग में गोली लगी थी , अतः उसे पेन्शन भी नहीं मिल सकती थी । इस संबंध में एक स्थान पर वह कहता है — " देश के , भारतमाता के लिए कुरबानी करके जहां एक बार अमर शहीदी को हासिल कर लिया , तो चन्द रुपल्ली की पिन्सन लेकर , कौन अपनी शान को बट्टा लगाना पसंद करेगा ? देने को तो सरकार पिन्शन ही क्या , तराई भाबर में इनामी-फारम देने को तैयार थी ... मगर मैंने कह दिया , कि " साहब " मैं अपनी कुरबानी की क़ीमत नहीं ले सकता ! .... बारह रुपये

महीने की ' डिसएबिलिटी पेन्शन ' मिली है , कहने से अपनी ही इज्जत मिट्टी में मिलती । " 52

उक्त उदाहरणों में डूंगरसिंह की लघुता-ग्रंथि के दर्शन होते हैं । अपनी अशक्ति और लघुता को छिपाने के लिए ही वह लंबी-चौड़ी हांकता रहता है ।

ग्रामभित्तीय उपन्यासों के ग्रामीण पात्रों में कतिपय यौन-विकृतियां भी मिलती हैं , जिनके पीछे कोई-न-कोई मनोवैज्ञानिक तथ्य कारणभूत होता है । मणि मधुकर के उपन्यास "सफेद मेमने " की बन्नो शारीरिक दृष्टि से एक ठण्डी औरत है । उसके इस ठण्डेपन (Frigidity) का कारण है । उसके मां-बाप साम्प्रदायिक दंगों तथा विभाजन के शिकार हुए थे । अतः मामा-मामी के यहां वह बड़ी हुई । " मामी ने ही उसे सैंतालीस के दंगों की कहानी सुनाई थी , जिन्होंने बन्नो के मां-बाप और भाई को सदा के लिए मिटा दिया था । किस तरह बाप की आंखें फोड़ दी गई थीं , पेट में खंजर भोंककर मांस निकाला गया , किस तरह भाई की चमड़ी को उबलते हुए आलू की तरह छीला गया , बोटी-बोटी काटकर फेंक दी गई , कैसे आठ-नौ जनों ने मां की नंगी देह को रौंदा , स्तनों की घुंडियां उतार ली और कूल्हों के बीच में मिरचों का चूरा भर दिया । " 53

इसे सुनते ही बन्नो बेहोश हो गई थी और तब से अपने शरीर के लिए उसके अन्दर का सुखपरा आकर्षण बुझने लगा था और जब रामौतार से शादी हुई तब वह एक निःसंग बेजुबान हरकत भर रह गई थी । The Diagram group द्वारा लिखित पुस्तक " Sex: A user's Manual " में Frigidity के संबंध में बताया है — " सम फ्रिजीड विमेन वेर टोल्ड एज चिल्ड्रन थेट द सेक्स इज़ बेड , रौंग एण्ड डर्टी . सच नोशंस वार्प थीज़ विमेन्स एटिट्यूड टू सेक्स सो थेट थे च्यू विथ गिल्ट , फियर एण्ड शेम थेयर ओउन सेक्सयुअल फिलिंग्स एण्ड ट्राय टू सप्रेस थेम , रिमेनिंग सेक्सयुअली अनरिस्पोन्सिव इफ थे मेरी . " 54 बन्नो की फ्रिजीडिटी के पीछे भी वे सब बातें कारण भूत हैं जो उसकी मामी उसे बताती हैं ।

Frigidity का बिलकुल विलोम है Nymphomania, जहां एक विशिष्ट परिवेश के कारण किसी स्त्री में यातीय-आवेग तथा इच्छाएं

बढ़े-चढ़े रूप में मिलती हैं। गांव की वयस्क औरतों में प्रायः फुहड़ और अश्लील बातें चलती रहती हैं और कई बार वे छोटे बच्चों या बच्चियों का भी लिहाज नहीं रखतीं। शैशव से ही जातीय विषयों के चिंतनाधिक्य से यह विकृति आती है। जातीय इच्छा का होना प्राकृतिक व सामान्य है, परंतु उसका अतिरेक ही विकृति माना जायेगा। ऐसे लोगों को, औरतों को, सेक्सयुल कार्यों एवं बातों में ही अच्छे आनंद आता है। "An ABC of Love" में इस संबंध में कहा गया है — "इट वुड बी मोर करेक्ट टु से आफ थेम थेट थेयर विल टु ओबटेन सेक्सुअल सटिसफेक्शन हेज बीन स्ट्रोन्गर थेन नोर्मल. थेयर सेक्सुअल डिजायर्स आर मोर इनक्रीज्ड एण्ड [illegible] एपरण्ट." [55]

"जल टूटता हुआ" की डलुवा इसी कोटि की स्त्री है। उसे दलसिंगार मउगा {9} से ही कुछ संतोष मिलता है। दलसिंगार बाह्यतः चाल-ढाल तथा बातचीत में तो मउगा लगता है। परंतु उसकी कामशक्ति औरों से अधिक है, इसलिए डलुआ उसे पसंद करती है।

जब किसी लड़की को प्रेम-व्यापार में फंसाकर बाद में उस पर बलात्कार किए जाएं अथवा उससे अवांछित काम लिए जाएं तब कई बार उसकी प्रेम-भावना निम्फोमेनिया में बदल जाती है। "चौथी मुट्ठी" की मोतिमा मस्तानी इसका उदाहरण है। "इमरतिया" की गौरी सधुआइन भी एक "निम्फो" औरत है, क्योंकि जमनिया मठ के जघन्य असामाजिक तत्वों को छिपाने के लिए उसका प्रयोग किया जाता है। जब जमनिया मठ को लेकर कोई बात पुलिस विभाग में उठती है, तब गौरी को थाने भेज दिया जाता है और मामला रफे-दफे हो जाता है। वह साल में कई-कई मर्द बदलती है, क्योंकि उसके ही शब्दों में वह गमयि हुए घोड़े को भी शांत करने की कूवत रखती है।[56] डलुवा और गौरी जैसी स्त्रियां समाज के लिए समस्यारूप इसलिए होती हैं कि वे अपनी अश्लील फुहड़ बातों से दूसरों को उनके वर्ग में शामिल कर लेती हैं। कामेच्छा अच्छी बात है, परंतु उसका अतिरेक किसी भी समाज को अस्वस्थ कर सकता है।

रेणु के उपन्यास "जुलूस" की सरस्वती रायगंज पिपरा में अध्यापिका थी, तब एक स्कूल इंसपेक्टर ने उसे प्रधान अध्यापिका बनाने की लालच देकर

"प्रेगनेण्ट " बना दिया था । बाद में गांव के ही एक युवक पारसप्रसाद की सहायता से एक अंग-भंग व्यक्ति से उसका विवाह हो जाता है । किसी हट्टे-कट्टे नौजवान से एकांत में मिलने पर उसकी "रीढ़ का दर्द " (1) चिन-चिनाता है । पारसप्रसाद , पहलवान , जेठ , कारे (नौकर) , मंडल तथा रामजयसिंह आदि से वह इसका इलाज करवाती रहती है । "अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल " की निर्गुनिया तथा "सफेद मेमने " की सूरजा जाटणी भी इसी प्रकार की "निम्फो " स्त्रियां हैं ।

नपुंसकता (Impotance) भी एक यौन-बीमारी या विकृति है । यह नपुंसकता भी दो प्रकार की होती है --- कुदरती और मनोवैज्ञानिक । कुदरती नपुंसकता में यौन-अंगों का पूर्ण विकास नहीं होता है , अतः उसे दूर नहीं किया जा सकता । परंतु कई बार नपुंसकता मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है , यदि उन कारणों को दूर किया जाय तो व्यक्ति सामान्य हो सकता है । कई बार यह भी देखा गया है कि एक ही व्यक्ति कहीं तो नपुंसक-सा होता है और कहीं पुंसत्वपूर्ण । भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "रेखा" के प्रोफेसर प्रभाशंकर रेखा को तो संतुष्ट करने में असफल रहते हैं , परंतु अपनी समवयस्का मिसेज जायस्वाल को पूर्णतया संतुष्ट करते हैं । इसमें प्रोफेसर के मैं समाया हुआ भय ही कारणभूत है , क्योंकि रेखा प्रोफेसर से बहुत छोटी है । स्त्री की उम्र पुरुष से अधिक हो , उसका व्यक्तित्व अधिक जाज्वल्यमान हो , वह मेस्क्यूलाइन वुमन हो , अपनी स्त्री के सम्मुख पति बच्चे-सा दिखता हो , ऐसी स्थिति में भी उसमें मनोवैज्ञानिक नपुंसकता आ सकती है । "अलग अलग वैतरणी " के कल्पू और पटनहिया भाभी इसके उदाहरण हैं । इस संबंध में प्रसिद्ध काम-वैज्ञानिक एस.जे. टुपिन का कहना है — " द जनरल रूल इज़ थेट इफ एराउजल केन अकर एट एनी टाईम ओर अण्डर एनी कंडीशन थेन द कोज इज सायकोलोजिकल. मोर ओवर फीजीकल ट्रबल्स केन युजअली बी सीन टु बी द कोज एण्ड हेन्स केन बी मोर इजिली एक्सेप्टेड व्हेरएज सम पिपल आर सो मेड थेट थे रिफ्यूज प्रेइज्ड पोइण्ट ब्लान्क टु इवन कंसीडर द पोसिबिलिटी आफ ए ' नरवस ' कोज . थीस थे फिल , इज एन इण्डिकेशन आफ विकनेस . थीस इज द फर्स्ट हर्डल टु बी ओवरकम ... एनक्साइटी अबाउट द फायनान्सीयल सिच्युएशन (परहेप्स

द कोमनेस्ट) , द हेल्थ आफ वनसेल्फ और अधर मेम्बर्स आफ द फेमिली , स्कूलींग , जोब्स — इन फेक्ट एनीथिंग व्हीच कोजिज द अनहेपिनेस — मे बी द स्ट आफ थीस इनएबिलिटी टू रीलेक्स एण्ड एनजोय सेक्सुअल रिलेशंस . " 57

कई बार ऐसा भी होता है कि जो व्यक्ति बाह्यतः नपुंसक-सा दिखता हो , वह जातीय दृष्टि से पुंसत्वपूर्ण हो । " जल टूटता हुआ " का दलसिंगार मउगा इसी प्रकार का व्यक्ति है । यदि किसी बच्चे का पालन-पोषण केवल औरतों के बीच ही हुआ हो , तब ऐसा होता है । दल-सिंगार की चाल-ढाल , बोलने का लहजा , हाथ मटकाना , इत्यादि उसे " मउगा" की कोटि में डाल देता है , परंतु उसमें कामशक्ति भरपूर है । तभी तो वह डलुवा जैसी "निम्फो " स्त्री को भी संतुष्ट करने में सफल रहता है ।

हस्तमैथुन (मास्टरबेशन) भी एक यौन-विकृति है । उसकी परिभाषा इस प्रकार है — " मास्टरबेशन मीन्स ट्राइंग टु सतिसफाय वन्स सेक्सुअल अर्जिज एलोन एण्ड अनएडेड . " 58 परिवेशगत कारणों से ग्रामीण बच्चों में जातीय उत्तेजना या ज्ञान अपेक्षाकृत जल्दी आ जाता है । जब उनकी यह कामोत्तेजना सीधे तरीकों से संतुष्ठ नहीं होती , तब वे हस्तमैथुन का रास्ता अंगीकृत करते हैं । सस्ती बाजारू कामशास्त्र या कोकशास्त्र की पुस्तकें भी इसमें कारणभूत है । "चौथी मुट्ठी" का बुकसेलर ऐसी गंदी अश्लील किताबें बेचता है । "अलग अलग वैतरणी " के गोपाल और कल्पू ; "काला जल" का रोशन ; " दिल एक सादा कागज " के मियां बाकर हुसैन ; "आधा गांव " का कम्मो ; " एक कहानी अंतहीन" का गोविंदराम आदि इसके उदाहरण हैं । बड़ी उम्र के उन स्त्री-पुरुषों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है जिनकी शादी नहीं होती या जो विधुर होते हैं या विवाह के बाद भी लंबे अंतराल तक जिन्हें अलग रहना पड़ता है । " एक कहानी अंतहीन " के गोविंदराम की पत्नी मैके गई है , अतः वह अपनी यौन-क्षुधा की परितृप्ति हस्तमैथुन द्वारा कर लेता है । 58

समलैंगिकता (Homosexuality) भी ऐसी ही एक यौन-विकृति है । स्त्री-पुरुष का यौन-संबंध स्वाभाविक वा प्राकृतिक अतएव साधारण (Normal) माना जायेगा , परन्तु इसके विपरीत उसे समलैंगिक विकृति ही माना जाएगा । इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है — " पिपल

हूज सेक्सुअल अर्जिज आर डायरेक्टेड प्रिंसीपली टवर्ड्ज परसन्स ओफ थेयर ओउन सेक्स आर कॉल्ड होमोसेक्सुअल्स एण्ड थेयर इंटरेस्ट इज कॉल्ड होमोसेक्सुआलिटी , बोथ टर्म्स बीइंग डिराइव्ड फ्रोम ग्रीक वर्ड्ज़ "होमो " (मीनिंग सेम) एण्ड " सेक्स " .[59]

पुरुषों में यह समलैंगिकता प्रायः दो प्रकार की होती है । प्रथम प्रकार में वे लोग आते हैं जो स्त्री-पुरुष संबंधों की आपूर्ति के रूप में इसे अपनाते हैं । " अलग अलग वैतरणी " के मास्टर जवाहरसिंह अकेले हैं , अतः वे अपने शिष्य रामखेलवा को अपने साथ सुलाते हैं । दूसरे प्रकार की विकृति प्रायः नवाबी - सभ्यता की देन है , जिसे "लौंडेबाजी" कहा जाता है । इसमें खूबसूरत लड़कों के साथ गुदामार्गीय मैथुन किया जाता है । डा० राही मासूम रजा के उपन्यास "आधा गांव " में सलीमपुर के जमींदार अशरफुल्लाखां हमेशा अपने साथ एक नमकीन लौंडे को रखते हैं ।[60] इसी उपन्यास के तक्कन चाचा कम्मो नामक एक लड़के को गोदाम में ले जाकर उसके साथ "सृष्टि विरुद्ध का कार्य " करते हैं । ऐसे लड़के ही आगे चलकर "हस्तमैथुन " व " लघुतागंथि " के शिकार हो जाते हैं ।

जब ऐसे समलैंगिक सम्बन्ध दो स्त्रियों के बीच होते हैं , तब उसे " लिस्बियन वृत्ति " कहा जाता है । लिस्बियन औरतें प्रायः ठण्डी होती हैं । " सफेद मेमने " की बन्नो का ठण्डापन उसकी मामी के कारण भी है , जो एक लिस्बियन औरत है ।

पशुमैथुन (Bestiality) भी ग्रामीण-परिवेश में व्याप्त एक यौन-विकृति है । नगरीय-परिवेश में उच्चवर्गीय महिलाओं में यह वृत्ति लक्षित होती है । अनेक प्राचीन दंतकथाओं में भी पशुमैथुन के दृष्टांत मिलते हैं । एक ग्रीक दंतकथा के अनुसार "लीडा" ने "हंस " के साथ मैथुन करके "हेलन" नामक पुत्री को पैदा किया था , जो अतीव सुंदरी थी ।[61] इसी प्रकार हमारे यहां भी "हनुमान-जन्म" को लेकर अनेक कथाएं प्रचलित हैं , जिनमें एक है — " अप्सरा पुंजिकस्थली (अंजनी नाम से प्रसिद्ध) केसरी नामक वानर की पत्नी थी । वह अत्यंत सुंदरी थी तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर पर्वत-शिखर पर खड़ी थी । उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वायुदेव ने उसका आलिंगन किया । व्रतधारिणी अंजनी बहुत घबरा गयी , किंतु वायुदेव के वरदान से उसकी कोख से हनुमान ने जन्म लिया ।" [62]

तात्पर्य यह कि यह पशु-मैथुन की प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है । "सफेद मेमने " का ढोरों का डाक्टर भानमल राजस्थान के एक दूरवर्ती गांव में अकेला रहता है । स्त्रियों के नाम पर उसका संपर्क केवल पोस्ट-मास्टर की पत्नी बन्नो से है , जिसे शील-संकोचवश वह कुछ कह नहीं सकता । एक दिन एक भैंस की नस उठती है । जब वह भैंस की विह्वलता को देखता है , तो उत्तेजित होकर अपनी यौन-क्षुधा की तुष्टि उससे कर लेता है । यथा -- " एकाएक उसके खून में चिनगारियां उछलने लगीं और कोई पुकार-पुकार के कहने लगा , 'डूबो , डूबो ' । डाक्टर सात नंबर की कोठरी में घुस गया । डाक्टर ने उसे {भैंसको} सहलाया । थुही पर थपकी दी । वह धीरे से अरड़ाकर बैठ गयी और जमीन पर गर्दन तानकर सुस्ताने लगी । डाक्टर की जांघों के बीचका हिस्सा कड़ा पड़ने लगा । पिंडलियों में कंपकंपी दौड़ने लगी ।उसने पैंट के बटन खोले और जल्दी से भैंस के प्र पुट्ठों को दबाकर बैठ गया । ढीली पूंछ ऊपर उठा दी । गोबर की बू सांस में भर गई । पर वह उसे बुरी नहीं लगी । एक गिलगिला आवरण चारों तरफ से उतर आया और वह हांफता हुआ उसमें पूरी तरह गुम होने लगा । व्यर्थ , सब-कुछ व्यर्थ । सच सिर्फ यही एक क्षण है । उसने रगों के तनाव को , ताप को अन्दर डूबोते हुए सोचा । भैंस शांत थी । उसकी उत्तेजना गिर रही थी , शायद । डाक्टर का ज्वार ठण्डा पड़ गया । वह कृतज्ञ भाव से भैंस की पीठ थपथपाकर उठा । पैंट के बटन बन्द करता हुआ अपनी कोठरी की तरफ चल पड़ा । " 63

उक्त यौन-विकृत्तियों के अलावा भी कई प्रकार की काम-कुण्ठाएं मिलती हैं । "अलग अलग वैतरणी " की दीपा {पटनहिया भाभी } एक शिक्षित एवं संस्कारी लड़की है , परंतु वह कल्पू जैसे तन-मन के रोगी व नपुंसक के गले मढ़ दी जाती है । फलतः उसकी ज़िन्दगी एक तड़प , एक कसक , एक अतृप्ति बन-कर रह जाती है । अतः उसकी अभुक्त यौन-क्षुधा उसे बच्चों को नंगा करने के लिए प्रेरित करती है । हृदयेश कृत "एक कहानी अंतहीन" उपन्यास की चन्द्र-कला का विवाह दहेज के अभाव में जल्दी से हो नहीं रहा है । अतः वह खिड़की के पास खड़ी रहती है , और आते-जाते युवकों को लेकर काल्पनिक यौन-कल्पनाओं में खोयी रहती है ।xxxxx स्नान कराने के बहाने वह अपने छोटे भाई की फुन्नी {जननेन्द्रिय} को भी बारंबार छूती है । इसमें उसे एक काल्पनिक आनंद मिलता है । " अलग अलग वैतरणी" के जगेसर और " नदी फिर बह चली"

के जगलाल को स्त्रियों की नंगी तस्वीरें देखने में विशेष आनंद आता है । यह भी एक प्रकार की काम-कुण्ठा है , जिसे Fetishism कहते हैं ।

लगातार असफलताओं और निराशाओं से "mental depression" की स्थिति का निर्माण होता है । जब कोई आदर्शवादी चरित्र अपने नैतिक मूल्यों को पराजित होते हुए देखता है , तब भी यह स्थिति आती है । ग्रामभित्तीय-उपन्यासों में इसे अनेक स्थानों पर लक्षित किया जा सकता है । "जल टूटता हुआ" के सतीश , "सूखता हुआ तालाब " के देवप्रकाश , "अलग अलग वैतरणी " के जग्गन मिसिर , "राग दरबारी " के रंगनाथ , " काला जल " के मोहसीन प्रभृति में हमें यह प्रवृत्ति मिलती है , जिसका विवेचन पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुका है ।

मद्यपान की समस्या भी जितनी सामाजिक व आर्थिक है , उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी । मानसिक परिस्थितियाँ --- जैसे , तनाव , संघर्ष , असुरक्षा के भाव , हीनता की भावना , आत्मकेन्द्रित होना , कार्य से भागना आदि के कारण मद्यपान की प्रवृत्ति जोर पकड़ती है । हर्टन ने अनेक जन-जातियों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष दिया कि जिस संस्कृति में संघर्ष और तनाव की मात्रा जितनी अधिक होती है , वहां मादक द्रव्यों का प्रयोग भी उतना ही अधिक होता है । स्ट्रेकर का मत है कि व्यक्ति शराब पीकर हीनता और असुरक्षा से अपने को मुक्त समझने लगता है ।[64] इलियट एवं मैरिल के अनुसार वे लोग जो बहुत संकोची , भावुक , सामाजिक दृष्टि से असुरक्षित तथा कठिनाइयों का सामना करने में असमर्थ होते हैं , मद्यपान को एक विकल्प के रूप में स्वीकार करते हैं ।[65] डा० बोंगर का मत है कि व्यक्ति आपत्तियों एवं चिन्ताओं से छुटकारा पाने हेतु शराब का प्रयोग करता है । जब व्यक्ति पर अनेक कठिनाइयाँ आती हैं और वह अपने को दुःखी महसूस करने लगता है तो कष्टों से मुक्ति पाने के लिए साधन के रूप में वह शराब पीने लगता है । इसलिए ही शराब को "संकट का पेय " या " मिसरी ड्रिंक " कहते हैं ।[66] "नदी फिर बह चली " का जग-लाल , " राग दरबारी" का जोगनाथ , "आधा गांव " का फुन्ननमियां , "कब तक पुकारूं " का सुखराम , " अलग अलग वैतरणी " झ के दुक्खन , झिनकू व जगेसर ; " अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल " का मोहना आदि इसके उदाहरण हैं ।

§घ§ धार्मिक समस्याएं

"धर्म " को यदि उसके सही मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में देखा जाय या लिया जाय ; तो धर्म मानव-समस्याओं के निवारण का एक प्रमुख साधन हो सकता है ; परन्तु धर्म के संकीर्ण , सांप्रदायिक , वस्तुतः अधार्मिक अभिगम के कारण उससे मानवीय संकट एवं समस्याओं में इज़ाफा ही हुआ है । धर्म जब बाह्याचारों में सीमित हो जाता है तो सड़ने लगता है और उसकी सडांध समाज में भी सडांध पैदा करने लगती है । धर्म का सबसे विकृत स्वरूप तब सामने आता है , जब वह पूंजीवादी-प्रभुवर्ग से सांठ-गांठ करता है । धर्म का यह गठ-बंधन उसे लक्ष्यच्युत कर देता है । धर्म के इस विकृत , संकीर्ण , धर्मान्ध , अनुदार , अमानवतावादी रूपबंध के कारण ही उसकी अत्यधिक आलोचना हुई है । धर्म के सही स्वरूप से किसीको भी विरोध नहीं हो सकता । नीचे धर्म के सही स्वरूप की कुछ परिभाषाएं तथा एतद्विषयक कुछ चिंतन प्रस्तुत है , जिससे धर्म के मूल स्वरूप को समझा जा सकता है :—

§1§ " श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि श्रुत्वा परेषां न समाचरेत् ।।[67]

अर्थात् सावधान होकर धर्म का वास्तविक रहस्य सुनो और उसे सुनकर उसीके अनुसार आचरण करो । जो कुछ तुम अपने लिए हानिप्रद और दुःखदायी समझते हो , वह दूसरों के साथ मत करो । §महाभारत§

§2§ इज्याध्ययनदानादि तपः सत्य क्षमा दमः ।
आलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्ट विध स्मृतः ।। [68]

अर्थात् यज्ञ , अध्ययन , दान , तप , सत्य , क्षमा , मन और इन्द्रियों का संयम तथा लोभ-त्याग — ये आठ धर्म के मार्ग हैं । इनमें यज्ञ एवं तप की व्याख्या आधुनिक संदर्भों में की जा सकती है । सत्कर्म हेतु किया गया प्रयत्न ही यज्ञ तथा उसके कारण उठाया गया कष्ट ही तप है । §महाभारत§

§3§ धर्म्मो यो बाधते धर्मं न स धर्म्मः कुधर्म्मतत् ।
धर्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः ।।[69] §अज्ञात§

अर्थात् जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुंचाता है, वह धर्म नहीं कुधर्म है। जो धर्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील है, धर्म वही है।

§4§ पर-हित सरिस धरम नहिं भाई।[70] §तुलसी§

§5§ लोक-समाज को धारण करने वाला धर्म है।[71]

— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

§6§ धर्म केवल लोगों की सेवा में है। तसबीह या मुसल्ला में नहीं है।[72] — शेख सादी।

§7§ मन को निर्मल रखना ही धर्म है, बाकी सब कोरे आडंबर है।[73]

— संत तिरुवल्लुवर।

§8§ गंभीरता, उदारता, विश्वस्तता, तत्परता तथा दयालुता का व्यवहार ही सच्चा धर्म है।[74] — कन्फूशियस

§9§ ही हू हेज़ फेथ हेज़ आल, एण्ड ही हू हेज़× लेक्स फेथ लेक्स आल, इट इज़ फेथ इन द नेम आफ द लोर्ड थेट वर्क्स वोन्डर्स, फोर फेथ इज़ लाईफ एण्ड डाउट इज़ डेथ,.[75] — श्री. रामकृष्णनु अर्थात् जिसे ईश्वर में विश्वास है, उसके पास सबकुछ है, पर जिसे उसमें विश्वास नहीं वह सबकुछ खोता है, ईश्वर में विश्वास करके ही लोगोंने आश्चर्यचकित कर देने वाले कार्य किए हैं, क्योंकि विश्वास ही जीवन है और शंका मृत्यु है।

§10§ द ओन्ली गोड टू वरशीप इज़ द ह्युमन साउल इन द ह्युमन बोडी. आफ कोर्स, ओल एनिमल्स आर टेम्पल्स टू, बट मेन इज़ द हाई-एस्ट, द ताजमहालुस आफ टेम्पल्स. इफ आई केन नोट वरशीप इन थेट, नो अधर टेम्पल विल बी आफ एनी एडवान्टेज. "[76] अर्थात् मनुष्य के शरीर में जो अंतरात्मा है वही ईश्वर है। यद्यपि सभी प्राणी ईश्वर के मंदिर हैं, तथापि मनुष्य इन सबमें सर्वोत्तम — मंदिरों का ताजमहल — है। यदि मैं उसकी पूजा न कर सका तो दूसरा कोई भी मंदिर मेरे लिए उपयोगी नहीं है।

उक्त सूत्रों में यदि धर्म के स्वरूप को ढूंढा जाय तो उसमें किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती, परंतु जैसे कि पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है धर्म के विकृत, बाह्याचार या बाह्याडंबर युक्त स्वरूप को लेने के कारण ही उसकी सर्वाधिक आलोचना हुई है। यथा —

§1§मूंड मुंडाये हरि मिले , सब कोई लेहि मुंडाय ।
बार-बार के मुंडने , भेड़ न बैंकुठ जाय ।। — कबीर [77]

§2§ धर्म-स्थान के नाम पर भारतभर में जो भंडार पड़े सड़ रहे हैं , वे धर्म-स्थान नहीं , धोखे की चीज़ें हैं । ये भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गए हैं । धार्मिक स्थानों का धन यदि राष्ट्र-निर्माण में लगे , तो इससे अच्छा काम और क्या होगा ?[78] — महात्मा गांधी

§3§ इतिहास में हम प्रायः ही देखते हैं कि धर्म ने , जो हमें ऊपर उठाने और श्रेष्ठतर बनाने के दावों के साथ आया था , लोगों से पाशविक आचरण करवाया है । उन्हें ज्ञान की ज्योति उपलब्ध कराने की बजाय उसने उन्हें बहुधा अंधकार में रखने की चेष्टा की है , उनके हृदय को विशालता प्रदान करने की बजाय उसने उन्हें कितनी ही बार संकीर्ण हृदय और दूसरों के प्रति असहिष्णु बनाया है । धर्म के नाम पर ही हजारों-लाखों का संहार हुआ है और हर संभाव्य अपराध किया गया है ।[79] §विश्व इतिहास की झलक ; पं. जवाहरलाल नेहरू §

§4§ भारत और अन्य देशों में जिस चीज़ को धर्म कहा जाता है , या कम-से-कम जो चीज़ संगठित धर्म का रूप रखती है , उसके दर्शन मात्र से मेरा मन अति घृणा से भर उठा । मैंने प्रायः ही इस चीज़ की भर्त्सना की है और उसका आमूल-चूल अंत करने की उत्कट इच्छा अनुभव की है । प्रायः सदैव यह अंधविश्वास , ~~मिथ्या×धारणाओं×और×शोषण×तथा×निहित×हितों~~ प्रतिगामिता और मतांधता का परिपोषक और हठधर्मिता , मिथ्या धारणाओं और शोषण तथा निहित हितों को बनाए रखने का समर्थक प्रतीत होता है ।[80] §आत्मकथा - पं. जवाहरलाल नेहरू §

§5§ मानव की परिपूर्णता में धर्म बाधक है । परलोक की सुंदर कल्पना कर धर्म अपनी आज की जिम्मेदारियों से बरी हो जाता है । धर्म आज रूढ़ियों और स्थिर स्वार्थों का समर्थक है । धर्म परमेश्वर की कल्पना कर मनुष्य को दुर्बल बना देता है , उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होने देता और उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करता है ।[81] §राष्ट्रीयता और समाजवाद -आचार्य नरेन्द्र देव §

§6§ धर्म तो मानव-समाज के लिए अफ़ीम है । धर्म एक भ्रमात्मक

सूर्य है , जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है , जब तक कि मनुष्य मनुष्यता के गिर्द नहीं घूमता ।[82] §कार्ल मार्क्स §

§7§ मंदिर अथवा गिरजाघर के जो जितना ही समीप रहता है , ईश्वर के प्रति उसकी उतनी ही कम श्रद्धा रहती है ।[83] §एंड्रयूज़ §

§8§ पंडित को भी सलाम है और मौलवी को भी ।
मज़हब न चाहिए मुझे इमान चाहिए ।[84]—अकबर इलाहाबादी

§9§ मंदिर-मस्जिद बैर बढ़ाते
मेल कराती मधुशाला ![85] — बच्चन

§10§ हम कहीं हिन्दू कहीं मुस्लिम बने बैठे रहे ,
धर्म के चौपाल पर , सारा वतन जलता रहा ।[86]
— बेकल उत्साही

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि धर्म के तत्वाभिनीवेषक अभिलक्षणों को यदि ग्रहण किया जाय , तो उससे मानव-जात का कल्याण अवश्यमेव हो सकता है । परंतु विडंबना यह रही है कि यह नहीं हुआ है । प्रतिगामी ताकतों ने धर्म को कल्याण-मार्ग से च्युत करके उसे वैपरित्य की दिशा में डाल दिया है । समता और न्याय के स्थान पर उसने विषमता के बीज बोये हैं । धर्म के ठेकेदारों द्वारा रचित शास्त्रों ने शोषण की बुनियाद पर धर्म के भवन का निर्माण किया है ।धर्म सबलों के हाथ में हथियार के मानिंद आ गया है । धर्म के साथ प्रभु-वर्ग का गठबंधन हो जाने से शोषण का यह शस्त्र और भी पैना और जानलेवा हो गया है । धर्म ने ऊंच-नीच पर आधारित जातिवाद को पोषित किया है ।धर्म के नाम पर जो कपोल-कल्पित बातें प्रचारित हुईं , उससे हमारे यहां एक बहुत बड़े वर्ग के साथ अमानुषी व्यवहार होता रहा । उदाहरणार्थ हम वैदिक ऋषि के निम्नलिखित सूक्त को ले सकते हैं , जिसमें ब्राह्मण , क्षत्रिय , शूद्रादि की उत्पत्ति के संबंध में कुछ कहा गया है —

" ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः ।
अरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रो ऽजायत ।। " [87]

अर्थात् ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से , क्षत्रिय बाहु से , वैश्य अरु /जाँघ जांघ/ से

और शूद्र पाद /पैर / से उत्पन्न हुआ । इस सूक्त का अनुमोदन बाद के लगभग 118 धर्मग्रंथों में हुआ है ।[88] इस धार्मिक प्रचार के कारण हिन्दू-समाज के एक वर्ग-विशेष को सदा-सदा के लिए निम्नता के गर्त में जाना पड़ा । "राग दरबारी" उपन्यास में चुनाव के दरमियान एक उम्मीदवार उक्त बात के द्वारा अपने मत का समर्थन करता है । चुनाव जीतने के लिए धर्म के एक ढोंगी महंत को अपने पक्ष में कर लिया जाता है और परिणाम यह आता है कि "मुख" जीत जाता है और "पैर" सुन्न पड़ जाता है ।[89]

धर्म द्वारा पोषित एवं संवर्द्धित वर्ण-व्यवस्था और तज्जन्य जाति-व्यवस्था के कारण हरिजन , चमार , मेहतर आदि जातियों का सहस्त्राधिक वर्षों से शोषण होता रहा है ; जिसे हम "धरती धन न अपना " " अलग अलग वैतरणी " , " जल टूटता हुआ " , " अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल " , "गोली " , " बगुला के पंख " प्रभृति उपन्यासों में लक्षित कर चुके हैं ।

धर्म के नाम पर नारी-समाज का शोषण भी होता रहा है । धर्म के नाम पर चलने वाली "देवदासी" प्रथा तथा "भगतिनों " की परंपरा धर्म के नाम पर चलने वाली एक प्रकार की धार्मिक वेश्यावृत्ति ही है ।[90] शैलेश मटियानी कृत "एक मूठ सरसों " में ऐसी भगतिनों का एक प्रसंग आया है । उक्त उपन्यास की दुखियारी नायिका देवकी समाज के अत्याचारों से त्रस्त होकर भाग खड़ी होती है । रास्ते में जागेश्वर-यात्रा से लौटती हुई जोगनमाता-ओं से उसकी भेंट होती है । महेश्वरी माता उसे अपनी शरण में ले लेती है और उसे आश्वासन देती है कि वह उसे नाथगिरि बाबा से दीक्षा दिलवाकर उसके तमाम सांसारिक दुःखों का अंत कर देगी । दीक्षा वाले दिन बाबाने निरंकार नागारूप (19) धारण करते हुए कहा था — " आओ , पापी संसार के कर्महीन संसारियों की तरह लाज-संकोच करना छोड़ो .... अपने संसारी वस्त्र उतार-कर , मेरे पदमासन में बैठकर लिंगेश्वर महाराज की पूजा करो । तुमको धरम का चोला प्राप्त हो जाएगा और फिर सारे रोग-शोक और भय-व्याधियों से मुक्ति मिल जायेगी । "[91] इसमें लेखक ने धर्म के नाम पर चल रहे "धार्मिक-व्यभिचार" की पर्तों को उधेड़ दिया है ।

गोपाल उपाध्याय कृत "एक टुकड़ा इतिहास" में धर्मानुमोदित

जातिप्रथा का एक दूसरा आयाम प्रस्तुत हुआ है । उपन्यास की नायिका चनुली एक डूम जाति की स्त्री है । उपन्यास का नायक कान्तमणि एक ब्राह्मण -युवक है । कान्तमणि चनुली की सुंदरता से आकृष्ट हो उसे अपनी पत्नी बना लेता है । इस घटना से गांव पर मानो वज्राघात होता है और पूरा गांव उनका सामाजिक बहिष्कार करता है । चनुली जब नौले पर पानी भरने जाती है , तब गांव की औरतें उसके घड़े को फेंक देती हैं । चनुली गांव भर की आंख में किरकिरी बनी हुई थी । जब खाली घड़ा सिर पर रखकर लौट आयी तो कान्तमणि का खून खौल उठा । इस पर चनुली चुप न रह सकी । वह दरांती लेकर पानी भरने जाती है और कहती है — " जिसने पिया हो अपनी मां का दूध वह आए अब मेरे नौले पर मुझे पानी भरने से रोकने के लिए । मैं भी नरूआ की लड़की नहीं अगर इसी दरांती से टुकड़े-टुकड़े करके गिण्डा न दूं । मुझे तो मरना ही है , पर पूरा गांव लेकर ही न मरूं तो जार और पातर की लड़की बताना मुझे । " [92]

आगे चलकर चनुली एक गांव में मास्टरनी बन जाती है तो लोग उसे स्वीकार नहीं करते । गांव के लोगों का कहना था — " सरस्वती के पवित्र मंदिर में डूमणी को रखने के लिए वे तैयार नहीं । हमारे अपने बच्चे , बीठ ब्राह्मणों की कन्याएं , अम्बा , अम्बिके , अम्बालिका-सी पवित्र कन्याएं एक डूमणी से विद्यादान लें ? डूमणी को सिर झुकाकर प्रणाम करें ? जीवन भर डूमणी की शिक्षा पर जिएं ? और नतमस्तक रहें ? " [93]

जब कान्तमणि की मृत्यु होती है तब उसके शव को उठाने , श्मशान घाट तक ले जाने और जलाने को भी कोई तैयार नहीं होता । उसका क्रिया-कर्म चनुली डूमों के ब्राह्मण (?) अनीराम को बुलवाकर करवाती है । यह कैसा धर्म ? कैसा धर्म× धर्मोन्माद ?

बाला दुबे के उपन्यास " मकान दर मकान " में भारतीय समाज में व्याप्त अलगाव , अन्याय तथा पाखण्ड के कई मनोरंजक चित्र मिलते हैं । आधुनिक काल में आर्य-समाज ने सर्वप्रथम अछूतों को अंगीकृत करने का प्रयास किया था । उसका एक प्रसंग उपन्यास में इस प्रकार वर्णित है — " हर इतवार की तरह उस इतवार को भी आर्य समाजी धुले कपड़े पहने आए और अछूत भाई भी । उस

सभा में पुराने सनातन भी कौतुकवश आए । आर्यसमाजियों के इस आकर्षक भाषण पर कि अछूत भी आखिर मनुष्य हैं और आर्य जाति के हैं , छुआछूत नहीं करनी चाहिए । इस पर किसी ने कहा -" तब क्यूं नहीं नाली साफ कर रहे मदारी भंगी को बुलाकर प्रसाद बंटवाया जाए । वैसा ही किया गया ।"[94]

इस पर ब्राह्मण और वैश्यों में दो वर्ग बन जाते हैं -- हरिजन के हाथ के लड्डू खानेवाले और न खाने वाले । इस पर पंचायत बैठती है और हरिजनों के हाथ के लड्डू खा लेने वालों को "सब व्यवहार सम्बन्ध बंद " की सजा होती है । इस पर यह निर्णय देने वाले गंगाप्रसाद की ओर देख कर पंडित शंभुदयाल भेद भरी मुस्कान बिखेरते हैं , क्योंकि शंभुदयाल जब आगरा फोर्ट स्टेशन पर पार्सल क्लर्क थे , तब एक पार्सल में भेजी मिठाई खा गए थे , बाद में पता चला कि वह पार्सल रावतपाड़ा के शिंगुरिया भंगी का था जिसने किसी भोज के जूठन के साबुत टुकड़ों का पार्सल अपने परिवार को भेजा था । इस बात को केवल गंगाप्रसाद ही जानता था ।

इसी उपन्यास में हिन्दुओं के निम्न जाति के लोगों द्वारा हो रहे धर्म-परिवर्तन के प्रश्न को भी उठाया है । इस उपन्यास के किस्ना व द्वारका शहर जाकर ईसाई हो जाते हैं । इस सम्बन्ध में एक स्थान पर द्वारका कहता है -- " ईसाई बन जाओ सुखों और इज्जत से रहो । सरकारी नौकरी मिलेगी । कोई जा बेजा काम नहीं करना पड़ेगा । और तुम्हीं देखो , हमारे पुरखे कितने ढोंगी है । अरे भंगी और चमार बनकर किसी के पास बैठकर दिखाओ तो जानें । फौरन दुत्कार करके भगा दिए जाओगे । पर ईसाई बनते ही चाहे जिसकी बगल में बैठ जाओगे । वो तुम्हें पास बैठने देगा । बातचीत भी करेगा । फिर क्यों इस जिल्लत को ढोए जा रहे हो ? "[95]

"धरती धन न अपना " उपन्यास में भी इस समस्या को लेखक ने उठाया है । उस उपन्यास का नंदसिंह पहले सिक्ख और बाद में ईसाई धर्म अंगीकार करता है । अपने ईसाई होने के सम्बन्ध में वह कहता है कि इससे सबसे बड़ा फायदा तो यह हुआ कि अब हम चमार नहीं रहे ।

"इमरतिया" उपन्यास में धर्म के नाम पर चलने वाले ढकोसलों तथा शोषण-लीलाओं का पर्दाफाश किया है । धर्म तथा प्रभु-सत्ता वर्ग का

गठ-बंधन भी इसमें रेखांकित हुआ है । जमनिया मठ का उद्भव और प्रचार-प्रसार कैसे हुआ , कैसे उसकी "सिद्धई " की बातें चारों तरफ उठने लगीं , कैसे निःसंतान स्त्रियों को संतान-प्राप्ति होने लगी , कैसे इससे जुड़े हुए भगौती-प्रसाद , विधीचन्द , ठाकुर साहब जैसे लोग दिन-दूना-रात चौगुना प्रगति [आर्थिक] करने लगे इत्यादि बातों को ऐसे करीने से प्रस्तुत की गई हैं कि धार्मिक भ्रष्टाचार की पर्त-दर-पर्त खुलती गई है । मठ में गौरी जैसे सधुआइनें हैं जिनका काम पुलिस के अधिकारियों तथा सत्ता-संपन्न लोगों को प्रसन्न रखना है । मठ पर किसी रपट के होते ही गौरी को थाने भेज दिया जाता है । वह इतनी मस्तानी है कि हर साल मर्द बदलती है । मठ में निपूती स्त्रियाँ भी आती हैं । जमनिया मठ के बाबा का चेला मस्तराम तो केवल उन्हें बाबा की चमत्कारिक [?] सोटी-भर छुआता है , बाद का मोर्चा तो बाबा , भगौतीप्रसाद , ठाकुर साहब , विधीचन्द आदि फतहबहादुर संभाल लेते हैं ।

"कभी न छोड़ें खेत " उपन्यास में इस धार्मिक-भ्रष्टाचार का एक नवीन कोण उकेरा गया है । वहाँ तो धार्मिक संप्रदाय के लोग महाजनी भी करते हैं और उसके द्वारा लोगों की जमीनें हड़पते हैं । उसके संत-महंत मुस्टण्डे होकर घूमते रहते हैं और सुंदरी स्त्रियों से बादाम-रोगान के तेल की मालिश भी करवाते हैं , जिसे पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है ।

तात्पर्य यह कि धर्म के नाम पर ढकोसले , पाखंड , भ्रष्टाचार , शोषण , जातिवाद , सांप्रदायिक जहर , संकीर्णता आदि का बाजार गरम है और धर्म से समाज तथा मानवता को जो लाभ पहुंचना चाहिए वह नहीं पहुंचता, बल्कि कई बार धर्म सामाजिक प्रगति के मार्ग में रोड़ा बनता है । धर्म का एक बहुत बड़ा कार्य है — समाज-सेवा तथा समाज-सुधार । परंतु धर्म तो मानसिक संकीर्णता को जन्म दे रहा है और सेवा के नाम पर गरीबों का शोषण हो रहा है । आंतरिक शुद्धि और सदाचरण ही मुख्य बात है । इन्हें उपेक्षित छोड़ केवल बाह्याचारों को अपनाने से केवल धार्मिक पाखंड में ही वृद्धि होगी । सामाजिक समता और न्याय की स्थापना ही धर्म का मूल उद्देश्य होना चाहिए । दलितों और पीड़ितों के लाभार्थ ही धर्म का प्रयोग होना चाहिए , पर हो रहा है , इसके विपरीत , जिसे कई उपन्यासों में लक्षित किया जा चुका है ।

निष्कर्ष : समग्र अध्याय पर एक दृष्टिपात करने से हम निम्नलिखित कुछ तथ्यपरक निष्कर्षों तक सरलता व सहजता से पहुंच सकते हैं :-

§1§ प्रस्तुत अध्याय में सांस्कृतिक , शैक्षिक , मनोवैज्ञानिक व धार्मिक समस्याओं पर विचार किया गया है ; परन्तु साथ ही साथ यह भी निर्दिष्ट हुआ है कि ये नाना प्रकार की समस्याएं अंतर्ग्रथित भी है और इनके एकाधिक आयाम हैं ।

§2§ नगरीय प्रभाव तथा दबाव , भौतिकवादी-चिंतन , औद्योगिकरण तथा शहरीकरण के दुष्प्रभाव , शैक्षिक अधकचरापन प्रभृति कारणों से ग्रामीण परिवेश में पुराने अच्छे मूल्यों का ह्रास हो रहा है और यह प्रक्रिया इलेक्ट्रोनिक मीडिया के कारण दिन-ब-दिन तेज़ हो रही है ।

§3§ ग्रामीण परिवेश में स्वातंत्र्योत्तर काल में संख्यात्मक दृष्टि से प्रगति हुई है , किन्तु गुणात्मक दृष्टि से शैक्षिक मूल्यों में अधःपतन की स्थिति को सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है । शिक्षा का व्यसायीकरण हो रहा है । शिक्षकों की गुणवत्ता संदिग्ध होती जा रही है । शिक्षा-जगत में सुधार के जितने प्रयास व प्रयोग हुए हैं , उनका दुरूपयोग ही अधिक हुआ है और लाभ के स्थान पर हानि हुई है ।

§4§ ग्रामीण परिवेश में जातिगत कुण्ठा , अर्थगत कुण्ठा , लघुता-ग्रंथि , कतिपय यौन-विकृत्तियों से उत्पन्न समस्याएं जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएं मिलती हैं । पिछड़े वर्ग की सामाजिक वा आर्थिक समस्याओं का भी मनोवैज्ञानिक समस्याओं में रूपांतरण हुआ है ।

§5§ धर्म के तत्वाभिनिवेशी अभिलक्षणों को अग्रिमता न मिलने के कारण उसमें अनेक प्रकार के बाह्याचारों पर निर्भर ऐसे पाखंड प्रविष्ट हो गए हैं , जिनसे धार्मिक भ्रष्टाचार में गुणात्मक अभिवृद्धि हुई है ।

===== xxxxx =====

:: संदर्भानुक्रम ::

§1§ राग दरबारी : पृ0 380 । §2§ पचपन खंभे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा :
§3§ "नयी समीक्षा:नये संदर्भ " : डा0 नगेन्द्र :पृ.79 // पृ0 109-110
§4§ " फ्रायड ओन मैन एण्ड सोसायटी " : मनोरमा सेवर : पृ. 186 ।
§5§ " टाईम्स आफ इण्डिया " : 19-3-91 : पृ. 6 ।
§6§ "कांचघर " : रामकुमार भ्रमर : पृ. 76 । §7§ वही : पृ. 166 ।
§8§ राग दरबारी : पृ. 82 । §9§ सूखता हुआ तालाब : पृ. 104 ।
§10§ "चंतामणि " : लोभ और प्रीति नामक निबंध : पृ. 58 । §11§ वही:पृ.59
§12§वरुण के बेटे : पृ. 34 §13§ वही : पृ. 36 §14§ गंगा मैया : पृ. 32-33 ।
§15§ काला जल : पृ. 18 । §16§ जल टूटता हुआ : पृ. 343-344 ।
§17§ अलग अलग वैतरणी : पृ. 13 । §18§ सांप और सीढ़ी : पृ. 160 ।
§19§ " हिन्दी उपन्यासों में ग्रामचेतना " : पृ. 298 ।
§20§ रंगभूमि : पृ. 27 । §21§ राग दरबारी : पृ. 269 ।
§22§ वही : पृ. 69-70 । §23§ वही : पृ. 69 । §24§ वही§ पृ. 45 ।
§25§ वही: पृ. 165 । §26§ वही : पृ. 123 ।
§27§ बड़ौदा की एक अंग्रेजी स्कूल में एक स्थान पर लिखा था -- " फीज़ आर
पेड्ड हीअर ! "
§28§ अंतराल : मोहन राकेश । §29§ जल टूटता हुआ : पृ. 398-399 ।
§30§ वही : पृ. 399 । §31§ राग दरबारी : पृ. 31 । §32§वही:पृ.31 ।
§33§ तुलनीय : " ज्ञान को है कौन पूछता ज्ञान गलियों में बिके ;
टीचर होने के लिए अब दाम होना चाहिए । "
-- डा0 पारूकांत देसाई ।
§34§ राग दरबारी : पृ. 34 । §35§ वही : पृ. 250-251 ।
§36§ वही : पृ. 130 । §37§ वही : पृ. 206 । §38§ वही:पृ. 363 ।
§39§ द्रष्टव्य : जल टूटता हुआ : पृ. 399 ।
§40§ धरती धन न अपना : पृ. 229 ।
§41§ महात्मा गांधी : हरिजनोत्थान : बाय देवीदयाल चतुर्वेदी : इण्डियन
प्रेस लिमिटेड : प्रयाग : 1951 ।

§42§ कोटेड बाय : जी.के. भुसकुटे : हिन्दूधर्म : मानव धर्म : पृ. 149 ।

§43§ इबिड : पी. 150 ।

§44§ धरती धन न अपना : पृ. 163 । §45§ वही: पृ. 131 ।

§46§ धरती धन न अपना : छात्र-संस्करण : पृ. 112 ।

§47§ वही : पृ. 113 । §48§ राग दरबारी : पृ. 214 ।

§49§ हौलदार : शैलेश मटियानी : पृ. क्रमशः 2, 2, 3, 3, 3, 31, 31, 31, 34, 43, 42, 47, 84, 84, 93, 94, 178, 178, 178 ।

§50§ वही : पृ. 177 । §51§ वही : पृ. 31 । §52§ वही:पृ. 181 ।

§53§ सफेद मेमने : पृ. 81 ।

§54§ " सेक्स : आ युजर्स मेन्युअल " : पृ. 262 ।

§55§ " एन ए.बी.जेड. आफ लव " : पृ. 117-118 ।

§56§ इमरतिया : पृ. 27 ।

§57§ " द सेक्स लाईफ फाईल " : प्रो. एस.जे. तुफिल : पृ. 156 ।

§58§ " एन एबीजेड आफ लव " : पृ. 227 ।

§59§ द्रष्टव्य : " वह तकिए को भींचता । अपना पैर चारपाई पर कसता । कभी चित होता, कभी पट । उसकी छटपटाहट जलती रेत पर पड़ी मछली जैसी थी । जब उसने हाथ का सहारा लेकर उस उबलते लावा को बाहर उलींच दिया, तभी वह सो सका था । " : एक कहानी अंतहीन: हृदयेश : पृ. 78 ।

§60§ " एन एबीजेड आफ लव " : पृ. 162-163 ।

§61§ द्रष्टव्य : आधा गांव : पृ. 91 ।

§62§ सी : " वी आर फेमिलियर वीथ द थीम फ्रोम काउन्टलेस ओल्ड लीजेन्ड्स, फ्रोम द ग्रीक, फोर एक्जाम्पल, अबाउट लीडा, हू प्रोड्यूस्ड द ब्यूटीफुल हेलन वीथ द हेल्प आफ ए स्वान . " : एन एबीजेड आफ लव : पृ. 30 ।

§63§ देखिए : " भारतीय मिथक कोश " : डा0 उषापुरी विद्यावाचस्पति : पृ. 363 ।

§64§ सफेद मेमने : पृ. 51 । §68§

§65§ " भारतीय सामाजिक समस्याएं " : डा0 एम.एल. गुप्ता : पृ. 240-241 ।

§66§ इलियट एण्ड मैरिल : ओप. सीट . पी. 198 ।

§67§ " भारतीय सामाजिक समस्याएं " : पृ. 239 ।

§68§ से §75§ : उद्धरण कोश : भोलानाथ तिवारी : पृ. 272-277 ।

§76§ धस स्पेक श्रीरामकृष्ण : पृ. 97 ।

§77§ धस स्पेक विवेकानंद : पृ. 24 ।

§78 से 85 § : उद्धरणकोश : भालानाथ तिवारी : पृ. 272-277 ।

§86§ मधुशाला : हरिवंशराय बच्चन ।

§87§ "हिन्दी गजल : उद्भव और विकास " : डा० रोहिताश्व अस्थाना : पृ. 111 ।

§88§ ऋग्वेद : 10, 90-12 ।

§89§ द्रष्टव्य : " इण्डियन सोसियल प्रोब्लेम्स " : डा० एम. एल. गुप्ता ।

§90§ द्रष्टव्य : राग दरबारी : पृ. 270 ।

§91§ "इण्डियन सोसियल प्रोब्लेम्स " : डा० एम. एल गुप्ता ।

§92§ एक मूठ सरसों : पृ. 90-91 ।

§93§ एकटुकड़ा इतिहास : पृ. 13 ।

§94§ वही : पृ. 85-86 ।

§95§ मकान दर मकान : पृ. 109 ।

§96§ वही : पृ. 124 ।

==== xxxx ====